प्रवेशांक

दिसम्बर–2025

शोध बोध

बोधकथा शोध संस्थान की मासिक ई–पत्रिका

www.jagoshiv.in

सहकर्मी द्वारा समीक्षित (पियर रिव्यूड)

दिसम्बर-2025

शोध बोध

बोधकथा शोध संस्थान की मासिक ई-पत्रिका

प्रधान संपादक

शिव नारायण सिंह

संपादक

शिवांश सिंह

संपादन सहयोग

शिवालिका सिंह

शिवेश सिंह

शिवांगी सिंह

अतिथि संपादक

प्रोफेसर सुशील कुमार तिवारी

आवरण एवं संयोजन

धर्मेन्द्र कुमार प्रजापति

प्रकाशक

बोधकथा शोध संस्थान

जागो शिव न्यास का उपक्रम

शिवलोक, गोरखपुर (उ.प्र.)

अनुक्रम

• अपनी बात...	शिव नारायण सिंह	03-04
• संपादकीय	प्रोफेसर सुशील कुमार तिवारी	05-06
• शिव नारायण सिंह की बोध कथाओं में मानव मुक्ति का प्रश्न	डॉ. चन्द्रशेखर कुशवाहा	07-16
• शिव नारायण सिंह की कथा-कृतियों के आलोक में बोधकथाः अर्थ, आधार और आयाम	धीरज कुमार	17-23
• शिव नारायण सिंह की बोध कथाओं में लोकपक्ष	शिवालिका सिंह कुशवाहा	24-29
• शिव नारायण सिंह की बोध कथाओं में यथार्थ	शिवेश सिंह	30-36
• शिव नारायण सिंह की बोध कथाओं में सन्निहित जीवन मूल्य	स्वप्निल सिंह	36-42
• शिव नारायण सिंह की बोध कथाओं में शिक्षा, संस्कार और जीवन मूल्य	शिवांश सिंह	43-49
• भारतीय ज्ञान परंपरा के संवाहक के रूप में शिव नारायण सिंह की बोध कथाएं	शिवांगी सिंह	50-56

अपनी बात ...

शिव नारायण सिंह

बोधकथा शोध संस्थान, शिवलोक गोरखपुर उ.प्र. एक ऐसा स्वप्न जिसे साकार होना ही था। किन्तु कब और कैसे? यह तो वही जाने, पर उन्नीस सौ निन्यानवे से दो हज़ार के बीच जाने-अनजाने ही प्रार्थना सभा में विद्यार्थियों के साथ जिस परम्परा का शुभारंभ हुआ, आज भी अक्षुण्ण है।

यह कहना कठिन, सुनना सरल और धैर्य की तो पूछिए ही मत, इतना अद्‌भुत! कोई कैसे सोच सकता था? सहसा आपको भी विश्वास नहीं होगा हमें तो अब भी नहीं हो रहा है किन्तु समय आया और परिस्थितियाँ ऐसी बनीं कि सब कुछ अपने आप होने लगा, कहने को यहाँ तक कह सकते हैं कि सारी चीज़ें रातोंरात सेट राईट हो गईं।

कभी-कभी लगता है बिना किये कुछ होना जाना नहीं है। फिर मन कहता है नहीं-नहीं सब कुछ नियत है, करने से कुछ नहीं होता, नहीं तो किसे पता था यहाँ तक पहुँचने में पच्चीस वर्ष लग जाएंगे। अब तो कहना ही होगा समय के साथ चीज़ें स्वरूप लेती-ही-लेती हैं। बस आवश्यकता है मनोयोग पूर्वक बीजारोपण की।

कैसे कहूँ आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व जब मैंने अपने शिक्षकीय जीवन की शुरुआत देवरिया में की तो केवल तीन विद्यार्थी मिले। भगवान बुद्ध ने जब सारनाथ में प्रथम दीक्षा दी केवल पाँच शिष्य सम्मिलित हुए और आज यहाँ बोधकथा शोध संस्थान शिवलोक गोरखपुर में केवल दो शोधार्थी। कहना न होगा संख्या मायने नहीं रखती कार्य के प्रति निष्ठा, प्रतिबद्धता और समर्पण का अपना महत्त्व है।

फिर बात आयी पत्रिका 'शोध बोध' के प्रकाशन की तो शोध आलेख चाहिए सात। स्पष्ट है प्रकाशन की शर्तें आड़े आने लगीं। चिन्ता हुई, तब तक देखता हूँ पाँच और शोधार्थी अपने कार्य में जुट गये हैं मन आश्वस्त हुआ और देखिए न! हम यूँ ही साथ-साथ चलते इसके प्रकाशन तक पहुँच गये।

इस कार्य की महत्ता और 'शोध बोध' पत्रिका का प्रकाशन अपने आप में एक विलक्षण घटना है। यह पत्रिका संस्थान में शोधार्थियों द्वारा किए गये उनके मौलिक शोध कार्य को उसी रूप में आप तक पहुँचाने का माध्यम बनेगी। जिसकी आज के समय में उतनी ही आवश्यकता है जितनी शुद्ध ऑक्सीजन की। अब कैसे न कहूँ आज हम अपनी ज़रूरतों के जंजाल में इतने उलझ गये हैं कि हमें समझ ही नहीं रहा, हम हैं क्यों?

कुछ यही समझने का एक विनम्र प्रयास है यह बोधकथा शोध संस्थान जहाँ शोधार्थी दस दिन में यह समझने लगे हैं कि जीवन में सब कुछ के बाद भी कुछ-न-कुछ ऐसा छूट रहा है जैसे वही जीवन तत्व हो, वही जीवन-मर्म हो, वही जीवन-आयाम हो जिसे जाने बिना, जिसे जिये बिना, जिससे ओत-प्रोत हुए बिना सब व्यर्थ और वह केवल और केवल यहीं सम्भव है।

कह सकते हैं बोध कथाओं का अपना संसार है। यहाँ वह भी है जो बीत चुका है, वह है जो बीत रहा है और वह भी जो बीतना शेष है। इस काल चक्र में अपने को सहेज पाना एक जटिल सम्भावना है। इन्हीं सम्भावनाओं में डुबकी लगाकर कुछ पाया जा सकता है। सच कहें तो पाने की शुरुआत ही देने से होती है देना मतलब खाली होना।

इसीलिए कहा गया है भरने की पहली शर्त है खाली होना। जब तक खाली नहीं होंगे भरेंगे कैसे? भरने के लिए खाली होना आवश्यक है। मुझे तो लगता है यह खाली होना और भरना दोनों दो चीज़ें नहीं हैं एक ही हैं। बस हमें समझना होगा क्या भरा जाना है और क्या खाली करना है? हम ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं और कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ते हैं क्या इसके लिए

किसी अभ्यास की, प्रयास की, अतिरिक्त समझ की आवश्यकता होती है, नहीं न।

क्या कभी सोचा आपने? जो चीज़ें स्वतः घटित होती हैं उन्हें हम महत्वपूर्ण नहीं मानते? आप यह भी कह देते हैं हमारा तो ध्यान ही नहीं गया इस ओर, तो मैं तो कहूँगा जाये भी क्यों और कैसे? इतना ही नहीं और भी बहुत कुछ है जिधर आपका ध्यान नहीं जाता। अब आप कहेंगे ऐसा क्यूँ कह रहें हैं आप, तो क्यूँ न कहूँ ? संभव है इसका जवाब ही आपको उस दिशा की ओर अग्रसर कर दे और आप कह उठें अब तो लग ही जाना चाहिए।

फिर वही बात 'सार सार को गहि लियो, थोथा दियो उड़ाय' की समझ से परिपूर्ण होने का यह अवसर बोधकथा शोध संस्थान के दस दिवसीय सत्र में यत्र-तत्र सर्वत्र बिखरी उन अनन्त बोध सम्पदा से आपको आप्लावित करने का प्रयास है, जो आपके चारों ओर उपस्थित तो हैं, किन्तु आपको इनका संज्ञान नहीं है। बस आपको वह दृष्टि मिल जाए कि आप उसे खोज सकें, पा सकें; जो आपका जीवन उद्देश्य निर्धारित कर सके।

मेरा मानना है यह जीवन उद्देश्य एक ऐसा अपरिभाषित शब्द है जिसे परिभाषित करने के उद्देश्य से ही, यह जीवन मिला है और हमें पूरी छूट है कि हम जब जैसे चाहें! किन्तु यह कैसी विचित्र विडंबना है सब कुछ के बाद भी हम इस बिन्दु पर पहुँचते-पहुँचते चूक जाते हैं इसे समझने में विलंब कर जाते हैं, इसे आत्मसात् करने से रह जाते हैं।

कैसे न कहूँ यह जीवन महत्त्वपूर्ण ही नहीं दुर्लभ है और जाने किस कर्म, किस धर्म, किस संयोग का प्रतिफलन है। मुझे तो यह फ्रिंज विड्थ की तरह लगता है एक बार जो आकृति बन गई फिर दुबारा बन ही नहीं सकती चाहे लाख प्रयास कर लें। कह सकते हैं यही जीवन के लिए भी सच है तो जरा सोचो इतना जानने के बाद भी क्या इसकी महत्ता पर कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता शेष है, नहीं न।

फिर किस इंतज़ार में हैं आप! तो यहाँ कुछ अजूबा नहीं होने वाला, न ही कभी हुआ है और न कभी होना है। 'करि बहिया बल आपनो छाड़ बिरानी आस' अर्थात् अब भी लग जाइए, अब भी जुट जाइए, अब भी जूझ जाइए। संभव है आपके अनुकूल और अनुरूप समय आ गया है। आप जो चाहें कर सकते हैं, किन्तु करना तो आप ही को है न। फिर देर किस बात की।

देर की बात ही कहाँ? मैं देख पा रहा हूँ संस्थान में शोधार्थियों के क्रियाकलाप, उनकी जीवनचर्या, उनके द्वारा की जा रही प्रोसेसिंग सच में आपको भी विश्वास नहीं होगा, ऐसा भी हो सकता है। किन्तु यहाँ ऐसा ही हो रहा है। वह सब साकार हो रहा है जिसकी कल्पना मन मस्तिष्क में लिए हम यहाँ तक पहुँचे हैं। क्योंकि आज के परिवेश में यह चमत्कार से कम नहीं है। तो इस चमत्कार को नमस्कार कहूँ, नहीं-नहीं प्रणाम कहूँगा।

प्रणाम तो उन सभी को जिन्होंने इस कार्य में पग-पग पर मेरा साथ दिया मेरे कंधे से कंधा मिलाकर चलते रहे, मेरी हर ज़रूरत और आवश्यकता को समझते रहे, उसे यथासंभव पूरा करने में लगे रहे और वे जो साँस रोके यह सब कुछ देखते, सुनते, समझते हुए मेरा उत्साह वर्धन करते रहे।

पुनः प्रणाम उस सत्ता, उस शक्ति, उस सत्य को जिसने इस यात्रा को यह स्वरूप प्रदान किया, जिसके अधीन, जिसके सहारे, जिसके भरोसे हम सभी आज शिवलोक,गोरखपुर में अनुप्राणित हैं और वह सब कर रहे हैं जिससे इस धरा को, इस प्रकृति को इस मानवता को श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठतम बनाया जा सके।

अब तो आप भी यही कहेंगे कि इस बोधकथा शोध संस्थान के मूल में जो बात है वह मात्र इतनी-सी है कि मनुष्य होने के क्रम में बोध कथाएं ही बोध कराने की प्राचीनतम् विधा रहीं हैं, जिससे सीखने और सिखाने की कला का सूत्रपात हुआ। इसे ही भगवान बुद्ध ने बोधगम्य बनाकर मनुष्य होने की शिक्षा दी। बाद में विष्णु शर्मा ने इसी विधा से राजा के पुत्रों को पंचतन्त्र की शिक्षा दी। अब वही विधा 'विद्यार्थियों से...' के रूप में हम सभी के सम्मुख है। इस परंपरा को आगे बढ़ाने का दायित्व अब हमारा है इसी विश्वास के साथ...

29.12.2025 शिवलोक, गोरखपुर उ.प्र.

संपादकीय

प्रोफेसर सुशील कुमार तिवारी
(हिंदी- विभाग)
शासकीय विवेकानंद स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
मनेन्द्रगढ़ (छत्तीसगढ़)

समकालीन समाज जिस वैचारिक असंतुलन,मूल्य - विस्थापन और संवेदनात्मक शून्यता के दौर से गुजर रहा है, उसमें साहित्य की भूमिका केवल सौंदर्यबोध तक सीमित नहीं रह जाती, बल्कि वह समाज को दिशा देने वाली चेतना का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। विशेषतः बोधकथा जैसी विधा, जो कथा दर्शन और जीवन-मूल्य का सहज समन्वय प्रस्तुत करती है, आज के समय में पुनर्विचार और गहन शोध की अपेक्षा करती है। इसी ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति के उद्देश्य से 'जागो शिव न्यास', शिवलोक, गोरखपुर (उ.प्र.) द्वारा 'बोधकथा शोध संस्थान' की स्थापना एक दूरदर्शी, वैचारिक और सांस्कृतिक पहल के रूप में सामने आई है।

बोधकथा शोध संस्थान' की अवधारणा अपने आप में विशिष्ट है। यहाँ शोध को केवल उपाधि-प्राप्ति का साधन न मानकर बौद्धिक साधना और सामाजिक दायित्व के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। शोध के इच्छुक शोधार्थियों को दस दिवस की आवासीय व्यवस्था उपलब्ध कराना तथा एक सत्र में आदर्श संख्या (दस शोधार्थी) का चयन एवं संवादात्मक-अध्ययन का वातावरण ये सभी तत्व इस संस्थान को पारंपरिक शोध ढाँचों से अलग पहचान प्रदान करते हैं।

'बोधकथा शोध संस्थान' का 'श्री शुभ सत्र' दिनांक 16 से 25 दिसम्बर 2025 तक आयोजित हुआ, जो अपने उद्देश्य, विषय- वस्तु और प्रस्तुत शोध आलेखों के कारण अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस आवासीय शोध-सत्र में उपस्थित शोधार्थियों ने न केवल अपने शोध आलेख प्रस्तुत किए, बल्कि बोधकथा, समाज और जीवन-मूल्यों पर गहन वैचारिक विमर्श भी किया। यह आयोजन इस बात का प्रमाण है कि यदि शोध को उपयुक्त अवसर और मार्गदर्शन मिले तो वह नवचिंतन और नवदृष्टि का सशक्त माध्यम बन सकता है।

'श्री शुभ सत्र' में प्रस्तुत शोध आलेख इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि उनकी रचनाएँ शिक्षा, संस्कार, लोकबोध और यथार्थ के समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। प्रस्तुत किए गए समस्त शोध आलेखों का समवेत अध्ययन इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि शिव नारायण सिंह की बोध कथाएँ समकालीन हिन्दी साहित्य में केवल एक कथात्मक विधा नहीं, बल्कि मानव-मुक्ति, भारतीय ज्ञान-परम्परा, शिक्षा, संस्कार, यथार्थ और लोकचेतना' का सघन वैचारिक दस्तावेज हैं। इन शोध आलेखों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से एक ही केंद्रीय सत्य को रेखांकित किया है कि बोधकथा जीवन को समझने, सँवारने और दिशा देने की सशक्त साहित्यिक विधा है।

डॉ. चन्द्रशेखर कुशवाहा द्वारा प्रस्तुत शोध आलेख 'शिव नारायण सिंह की बोधकथाओं में मानव मुक्ति का प्रश्न' यह प्रतिपादित करता है कि शिव नारायण सिंह की कथाओं में मुक्ति की अवधारणा केवल बाह्य सामाजिक बंधनों से स्वतंत्रता तक सीमित नहीं है, बल्कि वह आंतरिक अज्ञान, नैतिक पतन और आत्मविस्मृति से मुक्त होने की प्रक्रिया है। उनकी बोधकथाएँ व्यक्ति को आत्मबोध की ओर ले जाती हैं, जहाँ विवेक और नैतिक चेतना मानव-मुक्ति के मूल साधन बनते हैं।

धीरज कुमार द्वारा प्रस्तुत शोध आलेख 'शिव नारायण सिंह की कथा- कृतियों के आलोक में बोधकथा: अर्थ, आधार और आयाम'इन सभी विमर्शों को समेकित करते हुए बोधकथा की वैचारिक संरचना को स्पष्ट करता है। यह आलेख बोधकथा को केवल साहित्यिक विधा ही नहीं, बल्कि मानव आचार, जीवन-दृष्टि और सामाजिक दायित्व से जुड़ी चेतना के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

शिवालिका सिंह कुशवाहा के आलेख 'शिव नारायण सिंह की बोध कथाओं में लोकपक्ष'में यह प्रतिपादित किया गया है कि शिव नारायण सिंह की बोध कथाएँ जनसामान्य के जीवन, अनुभव और संघर्षों से गहरे रूप में जुड़ी हुई हैं। उनकी कथाओं में लोकजीवन की भाषा, प्रतीक और संवेदना इस प्रकार विन्यस्त है कि पाठक स्वयं को कथा का सहभागी अनुभव करता है।

शिवेश सिंह का शोध आलेख 'शिव नारायण सिंह की बोध कथाओं में यथार्थ'यह स्पष्ट करता है कि इन बोधकथाओं का यथार्थबोध पलायनवादी नहीं, बल्कि समाज की वास्तविक समस्याओं से संवाद स्थापित करने वाला है। शिव नारायण सिंह का यथार्थ मानवीय करुणा से संपृक्त है, जो विषमता, अन्याय और संघर्ष के बीच भी आशा और परिवर्तन की संभावना को जीवित रखता है।

स्वप्निल सिंह द्वारा प्रस्तुत शोध आलेख 'शिव नारायण सिंह की बोध कथाओं में सन्निहित जीवन-मूल्य' तथा शिवांश सिंह के शोध आलेख 'शिव नारायण सिंह की बोध कथाओं में शिक्षा, संस्कार और जीवन-मूल्य' इस बात को रेखांकित करते हैं कि शिव नारायण सिंह की बोध कथाएँ औपचारिक शिक्षा से आगे बढ़कर संस्कारपरक शिक्षा का स्वरूप ग्रहण करती हैं। ये कथाएँ सत्य, करुणा, कर्तव्यबोध, सामाजिक उत्तरदायित्व और मानवीय संवेदनाओं को जीवन-मूल्य के रूप में स्थापित करती हैं।

शिवांगी सिंह का शोध आलेख 'भारतीय ज्ञान परम्परा के संवाहक के रूप में शिव नारायण सिंह की बोध कथाएँ' इस तथ्य को उजागर करता है कि शिव नारायण सिंह की कथा-दृष्टि भारतीय ज्ञान-परम्परा की अविच्छिन्न धारा से जुड़ी हुई है। उनकी बोध कथाओं में उपनिषदिक चेतना, लोकनीति, करुणा और धर्मबोध का समन्वय दिखाई देता है, जिससे यह सिद्ध होता है कि वे आधुनिक समय में भारतीय सांस्कृतिक चेतना के संवाहक हैं।

इन सभी शोध आलेखों को संकलित कर प्रकाशित की जा रही 'शोधबोध' मासिक ई-पत्रिका केवल एक शोध-पत्रिका नहीं, बल्कि एक वैचारिक आंदोलन का प्रारंभ है। 'शोधबोध' नाम स्वयं में शोध और बोध के सार्थक समन्वय को अभिव्यक्त करता है। इसका उद्देश्य शोध को जीवन से जोड़ना, साहित्य को समाजोन्मुख बनाना और बोधकथा जैसी मूल्यपरक विधा को समकालीन विमर्श के केंद्र में लाना है। डिजिटल माध्यम में प्रकाशित होने वाली यह ई-पत्रिका शोधार्थियों, शिक्षकों, साहित्यकारों और पाठकों के बीच संवाद का सेतु बनेगी। यह पत्रिका उन शोध-प्रयासों को मार्गदर्शन प्रदान करेगी जो साहित्य को केवल अकादमिक अनुशासन नहीं, बल्कि मानव-निर्माण की प्रक्रिया मानते हैं। हमें विश्वास है कि 'शोधबोध' आने वाले समय में बोधकथा, जीवन-मूल्य और भारतीय ज्ञान-परम्परा पर केन्द्रित शोध का एक प्रामाणिक आधार बनेगी तथा हिन्दी साहित्य को नई दिशा और नई ऊर्जा प्रदान करेगी। यही इस पत्रिका का उद्देश्य और संकल्प है।

शिव नारायण सिंह की बोध कथाओं में मानव मुक्ति का प्रश्न

डॉ. चन्द्रशेखर कुशवाहा
शोधार्थी
बोधकथा शोध संस्थान
शिवलोक, गोरखपुर उ.प्र.
पूर्व शोधछात्र, हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा
विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ.प्र.

प्रस्तावना- शिव नारायण सिंह एक पुरुषार्थी शिक्षक हैं। वह एक वैज्ञानिक बुद्धि सम्पन्न गणितज्ञ तो हैं ही साथ-ही-साथ परम्परा से प्राप्त ज्ञान, संस्कृति तथा नवीन वैज्ञानिक अनुसंधानों के संश्लेषक भी हैं। वह देवरिया में प्रेस्टिज इंटरमीडिएट कॉलेज के संस्थापक आचार्य होने और भारत व विश्व के भविष्य की आदर्श स्थिति के स्वप्न द्रष्टा होने के साथ-साथ एक कुशल बोधकथा लेखक भी हैं। सृजनात्मकता उनके जीवन की अनिवार्य शर्त है। चाहे वह किसी भी रूप में क्यों न हो। वह निरंतर सृजन के पथ पर अग्रसर हैं।

उनके द्वारा लिखी गई बोधकथाओं में कुछ प्राचीन हैं, कुछ नवीन हैं और कुछ उनकी नितांत मौलिक कृतियाँ हैं, तो वहीं पर कुछ में नवीन-प्राचीन और मौलिकता का अद्‌भुत मिश्रण भी है। क्योंकि उनका कहन नितांत अपना है इसलिए जो कथाएँ प्राचीन हैं, वह भी नए तरह से निर्मित होकर प्रस्तुत हुई हैं। वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत, जैन, बौद्ध, जातक, पंचतंत्र इत्यादि की कथाओं का उपयोग उन्होंने अपने समय की आवश्यकताओं के अनुसार किया है।

विभिन्न लेखकों, भक्तों, कथाकारों, वैज्ञानिकों की जीवन कथाओं का भी अद्‌भुत प्रयोग उनकी बोधकथाओं में मिलता है। कबीर, तुलसी जैसे भक्त कवियों की रचनाओं में से कुछ पंक्तियों को आवश्यकतानुसार बार- बार उद्‌धृत करते हैं। आइन्स्टाइन, पाइथागोरस, राइट ब्रदर्स आदि खोजकर्ताओं की जीवन कथाओं के माध्यम से भी अपनी कथा के लिए आवश्यक रस खींच लेते हैं।

वर्तमान समय में अपने आसपास, देश और विश्व में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षिक तथा साहित्यिक क्षेत्रों में फैली हुई अनेक तरह की विसंगतियों के कारण बंधन में पड़ा हुआ मानव मन मुक्ति के लिए छटपटा रहा है। मनुष्य की इसी मुक्ति की साधना के लिए शिव नारायण जी की वाणी जो शब्द विधान करती आयी है उसका सम्यक अनुशीलन इस शोध पत्र में किया गया है।

बीज शब्द- शिक्षा, मुक्ति, आदर्श, यथार्थ, अध्यात्म, भौतिकता, समानता, विश्वशान्ति

शोध आलेख- बोध कथाकार शिव नारायण सिंह आस्तिक हैं। वह प्रकृति के शिव तत्व को हर जगह व्याप्त मानते हैं। प्रकृति हमसे पहले से है और वह हमारे बाद भी रहेगी। उसके अपने नियम हैं। विज्ञान का कोई भी नियम प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नहीं करता। इसलिए हमें उसके अनुसार चलना पड़ेगा न कि वह हमारे अनुसार चलेगी। उस पर विजय नहीं पाना है। उसके साथ चलना है, उसे समझना है।

उस पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न व्यर्थ है, यह बोध श्री शिव नारायण सिंह जी को हमेशा रहता है। वह कहते हैं "जबकि आँख, कान, नाक, मुँह और त्वचा, यहाँ तक कि रोम-रोम और हमारी इंद्रियाँ अर्थात् पूरा शरीर चौबीसों घंटे इंटेक करता रहता है, सारा जगत हमारे अंदर बाहर होता रहता है। आप इस बात को महसूस कीजिए, अभी जो श्वास हमने अंदर ली, वह बाहर और किसी वृक्ष ने श्वास ली, किसी पौधे ने श्वास ली, वह हमारे अंदर। क्या मतलब है इसका अर्थात् प्रकृति से अनवरत एकाकार होना ही स्वास्थ्य

है।"[1]

वह यह महसूस करते हैं कि मनुष्य को बचपन में दी जाने वाली शिक्षा ही उसके सम्पूर्ण जीवन का आधार बनती है। उसकी चेतना में बसी हुई बात ही, चाहे वह ज्ञान के रूप में हो या अज्ञान के रूप में, उसके आचरण के लिए उत्तरदायी होती है। हमारी शिक्षा व्यवस्था ही यह निर्धारित करती है कि बालक क्या पढ़ेगा, क्या सीखेगा, उसके जीवन का लक्ष्य क्या होगा और वह बड़ा होकर क्या करेगा ? जब आधार ही गड़बड़ हो गया, जब नींव ही कमजोर हो गयी तो बाद में जीवन रूपी भवन कैसे ठीक से बन सकेगा ? यह चिंता श्री शिव नारायण सिंह जी की मूल चिंता है।

मनुष्य का मन, जो अशांत है, जो शांति के लिए छटपटा रहा है, एक विज्ञान संवत, आध्यात्मिक और मूल्य परक शिक्षा व्यवस्था के द्वारा ही अपने उत्कर्ष को प्राप्त कर सकता है। इसीलिए वह छोटी कक्षा के विद्यार्थियों से लेकर इंटरमीडिएट के विद्यार्थियों को प्रार्थना सभा के बाद एक कथा सुनाया करते हैं। यह क्रम सालों से चलता रहा है। अब तक उनकी बोध कथाओं के दस खंड आ चुके हैं। प्रतिनिधि रचनाओं या कथाओं का संचयन अलग से प्रकाशित हो चुका है। उन पर की गयी आलोचना और अलग-अलग संस्थाओं में दिए गए व्याख्यानों का संकलन तथा कविता-संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रश्न यह है कि शिव नारायण सिंह की बोध कथाओं में मानव मुक्ति का प्रश्न किस प्रकार आया है? क्या इन बोध कथाओं के माध्यम से मुक्ति सम्भव है? क्या मनुष्य अपने को इस योग्य बना पाया है कि वह हर प्रकार के बंधन से मुक्त होकर स्वतंत्रता का अनुभव करे? इस 'शिस्नोदर परायण' युग में, जबकि परिष्कृत प्रौद्योगिकी के प्रयोग से सामाजिक ताना-बाना बदलकर एकदम नया रूप धारण कर चुका है।

लोग संगति-असंगति का विवेक खोकर प्रतियोगितावश भेंड़ चाल में एक अंधी सुरंग में प्रवेश करते जा रहे हैं, जहाँ मानवता का कोई भविष्य नहीं है। लोग बीमारियों को ही स्वास्थ्य समझने लगे हैं और स्वास्थ्य को बीमारी। अशांत रहकर भटकते रहने में ही जीवन का सुख मानने लगे हैं। धार्मिक कथाओं के नाम पर लोग लड़ने को तैयार बैठे हैं, जैसे-जैसे शिक्षा का स्तर ऊँचा उठ रहा है, वैसे-वैसे समाज की समस्याएं बढ़ रही हैं। दुनिया भीषण संकटों से ग्रसित है, इन्सानियत के सारे घाव खुल गए हैं वह विश्वयुद्ध के मुहाने पर बैठकर छोटे-छोटे युद्ध रोज लड़ रही है। विश्व भर के राजनेता विश्वशान्ति की आड़ में अपने अशांत मन के पोषण के लिए अपनी-अपनी मासूम जनता का शोषण कर रहे हैं। तब ऐसी स्थिति में श्री शिव नारायण जी की बोध कथाओं का मानव मुक्ति में क्या योगदान हो सकता है, यह ज्वलंत प्रश्न है।

शिव नारायण सिंह बोध जागृत करना चाहते हैं। वे बार-बार अपनी तरफ से एक प्रोसेस की बात करते हैं। एक बार जो प्रोसेस में आ जाता है, उसकी प्रोसेसिंग शुरू हो जाती है और वह अंतत: अपने गंतव्य तक पहुँच ही जाता है। वे कहते हैं कि "मेरा केवल इतना ही काम है कि मैं आपको जगा दूँ, लेकिन आप इस इंतजार में बैठे रहें कि आपके घर आऊँगा और दरवाजा खटखटाऊँगा तो यह सम्भव नहीं है। यह मेरे बूते की बात नहीं है, यह मेरे वश में नहीं है। मैं ऐसा कर भी नहीं सकता, क्योंकि यह मेरे लिए सम्भव नहीं है।

जिसे जागना है, जिसे बनना है, जिसे पाना है, जिसे होना है, बस इसी प्रोसेस में होना है, अलग से कोई प्रोसेसिंग नहीं होनी है, अलग से कोई रास्ता नहीं है, अलग से कोई विधि नहीं है, अलग से कोई मेथड नहीं है, अलग से कोई व्यवस्था नहीं है। जिसे होना है बस इसी में होना है, जिसे पाना है बस इसी में पाना है, जिसे जानना है बस इसी में जानना है, जिसे जागना है बस इसी में जागना है, जो जागा वहीं जाना।"[2]

इसी प्रोसेस को पूरा करने के लिए श्री शिव नारायण सिंह अपने कॉलेज की प्रार्थना सभा में बच्चों को संबोधित करते हुए अनेक बोध कथाएँ सुनाते आ रहे हैं। उन कथाओं की व्याप्ति बड़ी है। उनमें कई तरह के विषय शामिल हैं। जो बातें पाठ्यक्रम के

माध्यम से बच्चे नहीं जान पाते वे बातें श्री शिव नारायण सिंह प्रार्थना सभा में कथा के माध्यम से सहज ही बता दिया करते हैं। अपने एक साक्षात्कार में वे स्वयं कहते हैं कि "प्रार्थना सभा में अपने बच्चों के बीच देश-दुनिया, जीवन-अनुभवों, जीवन में घटने वाली रोज की घटनाएं और तरह-तरह की ऐसी बातें, जिन्हें वे औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में नहीं जान सकते, इस पढ़ाई के प्रोसेस में नहीं सीख सकते, इस स्कूली शिक्षा में उन्हें देने की कोशिश करता हूँ और उनके अंदर एक ऐसा विश्वास पैदा करना चाहता हूँ कि वे इस बात का अनुभव करने लगें, वे जो चाहें हासिल कर सकते हैं, वे कुछ भी कर सकते हैं। उन्हें जमीन से जुड़े रहने की प्रेरणा देते हुए जीवन में आने वाली बड़ी-से-बड़ी कठिनाई, बड़ी- से- बड़ी समस्या, बड़ी- से- बड़ी परेशानी को झेलने और बड़ी-से-बड़ी ऊँचाई को छू लेने के लिए तत्पर रहने के अनुरूप प्रेरित करना ही मेरा मूल उद्देश्य है।"[3]

शिव नारायण सिंह अपने छात्रों के मनोविज्ञान को समझते हैं और वह उनका मनोबल बढ़ाने के लिए कई तरह की कथाओं को गढ़ते हैं। उनके भय का निवारण करके, जीवन-संग्राम के लिए तैयार करके सहजता प्रदान करते हैं। वैसे भी जो उनको जानता है वह जानता होगा कि उन्हें सहज अनुशासन बहुत प्रिय है। जो गुण उन्होंने विकसित किए हैं वह महापुरुषों को ही सुलभ हैं। विद्यार्थियों से कही जाने वाली हर बोध कथा के अंत में शिव नारायण सिंह यह बात अवश्य कहते हैं कि "आप इस दिशा में लगे हैं, लगे रहेंगे, आप सफल हो रहे हैं, आप सफल होते रहेंगे। आप सफल हों।"[4]

उनकी कथा की दिशा, कथा का कथ्य, कथा का विस्तार, कथा की सहज ही बोधगम्य सरल भाषा और नवीन शैली विद्यार्थियों व पाठकों को सहज ही आकर्षित करती है। ऐसे ही 'मेरे प्रिय जागो' में संकलित उनके व्याख्यानों के अंत में इसी सकारात्मकता का आह्वान होता दिखाई देता है। वे कहते हैं कि "मेरे प्रिय, जागो, अपने अंदर की अनंत शक्ति को जागृत कर इस संसार को सुंदर बनाने में अपना योगदान कर सको, यही इस जीवन की सार्थकता है।"[5]

'प्रिय विद्यार्थियों' और 'मेरे प्रिय' जैसा अद्भुत सम्बोधन कथाकार और श्रोता के बीच की बाँडिंग को मजबूत बना देता है। यदि कोई शोधार्थी भविष्य में किसी संबंध सूत्र के टूट जाने से यह न जान पाए कि वह बच्चों को सुबह स्कूल में प्रार्थना सभा के बाद यह कथाएं सुनाया करते थे तो वह यही सिद्ध करेगा कि शिव नारायण जी इस विशेष शैली में अपनी बोध कथाएं लिखा करते थे। स्पष्ट है कि उनकी बोध कथाओं में लोक संस्कृति का परिष्कृत रूप विधान मौजूद है। हिन्दी साहित्य में यह नवीन शैली अपना स्थान सुरक्षित रखने योग्य पूरी तरह सक्षम है। व्यंग्य कथाकार हरिशंकर परसाई तथा कुछ अन्य रचनाकार भी इस शैली के प्रयोग से हिन्दी साहित्य को समृद्ध कर चुके हैं।

शिव नारायण सिंह अपने विद्यार्थियों से, अब पाठकों से क्योंकि उनकी कथाओं का संकलन किताब रूप में उपलब्ध है और हम एक अध्येता के रूप में उनका अध्ययन कर रहे हैं, वे हमेशा पूरे बोध के साथ वर्तमान में जीने की सूझ प्रदान करते हैं। वह परम्परा को छोड़ना नहीं चाहते परन्तु यह भी आगाह कर देना चाहते हैं कि जो ज्ञान पुराना है, वह अब व्यर्थ भी हो सकता है। यह कहते हुए भी कि "शास्त्र को इग्नोर नहीं कर सकते। साइंस को लेकर हम चल रहे हैं लेकिन शास्त्र को हमें मानना है।"[6]

वह किसी भी प्रकार की जड़ता से चिपक जाने का विरोध करते हैं। 'अप्प दीपो भव' शीर्षक से कथा में वह अपने विद्यार्थियों को बुद्ध और आनंद के माध्यम से यही बात समझाते हैं। वर्तमान की समझ विकसित करने के लिए वह लता और सूखे वृक्ष का उदाहरण भी प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं कि "वर्तमान यही है। बुद्ध ने भी कहा है, हम भी कहते हैं, सभी कहते हैं। जो वर्तमान को जीता है, यथार्थ को जीता है, जो इसी क्रम को, इसी क्षण को जीता है, वह निश्चित ही

अरहंत होता है। निश्चित ही ज्ञानी होता है। अब बात रह गई आपकी तो आप कहेंगे कि अभी हम बच्चे हैं। आप कहते हैं कि सहारे की जरूरत है। आप महसूस करते हैं कि आपको सहारे की जरूरत है। सूखे वृक्ष से भी लता लिपटी रहती है। लता यह नहीं देखती कि जिससे वह लिपटी हुई है वह वृक्ष सूखा है कि हरा है।"[7]

कुल मिलाकर किसी ज्ञानी का, किसी विवेक सम्मत परम्परा का सहारा ही अभीष्ट हो सकता है, किसी अज्ञानी या किसी जड़ परम्परा का नहीं। यही अपना ज्ञान ही मुक्ति का मार्ग खोलता है। शिव नारायण सिंह बोध जागृत करने के लिए अपने प्रिय विद्यार्थियों और पाठकों को हर तरह से संतुष्ट करना चाहते हैं। व्यक्ति, जो कहे कि मुझे बोध प्राप्त हो गया है परन्तु हर घड़ी असन्तुष्ट रहता हो, वह अबोध है। बोध प्राप्त व्यक्ति (बुद्ध) अपने मन पर नियंत्रण प्राप्त कर लेता है। वही विजयी कहलाता है।

मन पर नियंत्रण रखने के लिए वह 'इच्छापूर्ति' जैसी कथा का सृजन करते हैं। वह बकरी की भूख के माध्यम मानव मन की भूख को, उसकी चंचलता को व्याख्यायित करते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि बकरी एक माध्यम बनकर, मन की भूख का रूपक बनकर सामने आई है। अपनी बात ठीक-ठीक संप्रेषित करने के लिए शिव नारायण सिंह सृष्टि की किसी भी वस्तु को पात्र के रूप में सृजित करने की सामर्थ्य रखने वाले कथाकार हैं।

बकरी को कितनी भी घास खिलायी जाय वह भूखी ही रहती है। दंड प्रहार के बाद वह खाने से भी डरने लगती है। उसी प्रकार मन को भी आहार से संतुष्टि नहीं होती। उसे कठोर नियंत्रण में रखना ही पड़ता है। वे कहते हैं - "आपके मन के साथ भी जब कठोरता से पेश आया जाता है, तो एक निश्चित उद्देश्य की ओर लगा दिया जाता है। उस उद्देश्य पर दृढ़ रहने के लिए मजबूर किया जाता है, तब जाकर वह मानता है। जब तक वह किसी उद्देश्य पर नहीं लग जाता, चाहे उसकी मजबूरी हो, चाहे किसी प्राब्लम में लगा हो, तब तक वह भटकता रहता है। भटकने का कारण क्या है? लालच, तृष्णा जो मृग मरीचिका की तरह उसका पीछा नहीं छोड़ती।"[8]

मन की शांति के लिए श्री शिव नारायण सिंह दार्शनिक उक्तियों का भी प्रयोग करते हैं। जहाँ एक तरफ बीच-बीच में दर्शन की इतनी मार्मिक उक्तियाँ दिखाई देती हैं कि मन शांत होकर थोड़ी देर के लिए एक गहरे अमृतकुंड का अंत:वासी हो जाता है। वहीं दूसरी तरफ बीच-बीच में शिष्ट हास्य की ऐसी सुसंस्कृत छटा दिखाई देती है कि मन अनुरंजित हुए बिना नहीं रहता। यह उनकी अपनी विशिष्ट कहन शैली की विशेषता है। बहुत ही मार्मिक दार्शनिक उक्तियों के दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

"प्रिय विद्यार्थियों, यह सारी दुनिया बंधन है, एक अदृश्य बंधन, जिसे भी बांधते हैं उसके साथ हम स्वयं भी बंध जाते हैं, चाहे वह पशु ही क्यों न हो, फर्क बस इतना है कि उसका बँधना हमें दिखाई देता है किन्तु अपना हम देख नहीं पाते। अगर हम किसी को दौड़ाते हैं, तो उसके साथ हमें भी दौड़ना होता है।"[9]

"अलग से कोई परमात्मा नहीं है। न ही कहीं स्वर्ग है और न ही कहीं नर्क, सब कुछ इस पृथ्वी पर ही है। आत्मा स्वयं ही अपने पूर्व के किए कार्यों के अनुक्रम में शेष कार्यों को पूर्ण करने के लिए नया शरीर धारण करती है और उसे यह नया जन्म स्वयं ही तय करना होता है क्योंकि वही परम सत्य स्वरूप ब्रह्म हो जाती है।" [10]

हमारे अपने मन की शांति के बिना विश्व शांति असंभव है। जब हम स्वयं शांत होंगे तभी विश्व शांति संभव है। यह कितनी विचित्र बात है कि विश्व शांति के अनेकों प्रयत्न हो रहे हैं, हर वर्ष अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन हो रहे हैं परंतु कोई भी अपने को शांत करने का कोई प्रयास नहीं कर रहा है। सब दूसरे को शांत करने में लगे हुए हैं। श्री शिव नारायण सिंह कहते हैं कि "मैं पूछता हूँ, मैं पूछना चाहता हूँ उन लोगों से जो विश्व शांति का प्रयास कर रहे हैं, वे अपने अन्दर झाँककर देखें, क्या वे स्वयं शांत हैं ? और जब वे स्वयं शांत नहीं हैं तो विश्वशांति कैसे सम्भव है ? यह विचारणीय प्रश्न

है"[11]

इस विडंबना के लिए वह शिक्षा व्यवस्था को ही जिम्मेदार मानते हैं। क्योंकि जो पढ़ाया ही नहीं गया, जो सिखाया ही नहीं गया, जिसे शिक्षक खुद ही नहीं जानता, जो पाठ्यक्रम में है ही नहीं उसे भला कोई क्या जान सकता है। इसलिए वह शिक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करने की सलाह देते हैं। वह 'विश्वशान्ति में मूल्यपरक शिक्षा की भूमिका' को अहम मानते हैं। इसी शीर्षक लेख में वह आगे पुन: कहते हैं कि "पहले हमें स्वयं को शांत करना होगा। हमें ऐसी शिक्षा की जरूरत है जो हमें शांत कर सके, जो हमें ध्यानस्थ कर सके, जो हमें एकाग्र कर सके, जो हमें यथार्थ, वास्तविकता और सच्चाई का ज्ञान करा सके ताकि हम सच्चाई को समझ सकें, आत्मसात कर सकें, आचरण में उतार सकें, उसका अनुकरण कर सकें, औरों को भी अनुकरण के लिए प्रेरित कर सकें, जिससे हर कोई अपने को जान सके, पहचान सके और वह सब कर सके जिसके लिए उसका यहाँ आना हुआ है।"[12]

शान्ति को विश्वव्यापी बनाने में जबकि शिक्षा की इतनी बड़ी भूमिका है, वह अपनी मूल्यपरकता खोकर व्यावसायिक हो गयी है। अधिक मुनाफा कमाने के लिए कोई कुछ भी पढ़ाए जा रहा है। गणित का विद्यार्थी होने के नाते योग्यता के आधार पर कथाकार शिव नारायण सिंह इस बात को लेकर एकदम तटस्थ हैं कि आज की शिक्षा मनुष्य को मनुष्यता से दूर करने वाली, उसके अहम को संतुष्ट करने वाली तथा महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति करने वाली एक चतुराई पूर्ण उपाय बन गयी है।

सारी शिक्षा कैल्कुलेशन बेस्ड हो गई है। इस संदर्भ में एकदम दो टूक कहते हैं वह। उन्हीं के शब्दों में कहें तो "शिक्षा ने अपना मूल स्वरूप खो दिया है। केवल कुछ परीक्षाएं पास कर लेना या किसी बड़े पद की नौकरी प्राप्त कर लेना इसे मैं शिक्षा नहीं समझता। जिस शिक्षा का सम्बन्ध जीवनचर्या से न हो, वह एकदम बेकार है, किसी काम की नहीं है, उसका कोई मतलब नहीं है। चाहे कितनी भी बड़ी डिग्री ले लें, मैं इसे शिक्षा नहीं मानता।"[13]

इस शिक्षा व्यवस्था से उपजी पीढ़ी का हाल यह है कि उसे बलि का पशु बनाकर उसके सामने हरी-हरी घास डाल दी गयी है और वह खुश होकर खाए जा रही है। उसे निकट भविष्य का कोई भी दुख दिखाई नहीं दे रहा है कि उसे काट दिया जाएगा। लखइ न रानि निकट दुख कैसे, चरइ हरित तृन बलि पशु जैसे। ऐसी स्थिति से नजात पाने के लिए ही उन्होंने अपने विद्यार्थियों को बोध कथाओं के माध्यम से वह सब बताना शुरू किया जो वह पाठ्यक्रम के अनुसार नहीं बता सकते थे। गणित से निकलकर उन्होंने शिक्षाशास्त्र, दर्शन और हिन्दी साहित्य में अपना स्थान बना लिया है।

जिसे वह शिक्षा कहते हैं उसके बारे में उनकी राय एकदम स्पष्ट है। उनकी परिभाषा फिक्स है। वे कहते हैं - "शिक्षा केवल शिक्षित होना, जानकारियाँ इकट्ठी कर लेना, वक्तव्य दे लेना, लोगों को अपने वाग्जाल में फँसा लेने तक ही तो सीमित नहीं है न? यह तो मनुष्य के सम्पूर्ण रूपांतरण की विधा है और आज के दिन हम कितना रूपांतरित हो पा रहे हैं। इस शिक्षा से, हमें स्वयं पता है। यदि ऐसा है तो हमें इस माध्यमिक शिक्षा का ही रूपांतरण करना होगा। बिना ऐसा किए न तो इस माध्यमिक शिक्षा का मतलब है और न ही हमारा।"[14]

इस तरह की शिक्षा की वास्तविकता को समझाने के लिए शिव नारायण सिंह जीसस के एक शिष्य की कथा सुनाते हैं। वह शिष्य जो जिद करके जीसस से मरे को जिंदा करने की तरकीब जान लेता है। जीसस उसे उसके अमरत्व का उपाय बताना चाहते थे, परंतु वह दूसरे मरे हुए लोगों में रुचि ले रहा था। वह उन्हें जीवित करके देखना चाहता था। जीसस ने उसे वह विद्या दे दी और वह एक शेर को जीवित करके बाद में उसी से मारा गया। उसे विद्या तो मिली पर जल्दबाजी में बिना बोध के वह जीसस के पास से भाग गया। तब शिव नारायण सिंह कहते हैं कि "मंत्र,

यंत्र और तंत्र जब तक सही हाथों में नहीं होगा, सही व्यक्ति के पास नहीं होगा, तब तक उसका सही उपयोग संभव नहीं है।"[15]

इसीलिए जब पाठ्यक्रम निर्माण की बात आती है तब वह 'फँडामेंटल्स, लोकल नीड, पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए वैश्विक स्तर, ग्लोबल लेबल के अनुरूप पाठ्यक्रम' की वकालत करते हैं ताकि शिक्षा गुणवत्तापरक हो और शिक्षार्थी वर्तमान चुनौतियों का सामना कर सकने योग्य बन सके।' इसलिए वह कहते हैं कि "मेरे प्रिय, समस्याओं की जड़ में जाना जरूरी है। मूल समस्या क्या है? शिक्षा पद्धति पर गौर करना होगा, पुन: गौर करना होगा, बार-बार गौर करना होगा। जबसे यह शिक्षा पद्धति चली आ रही है, हम केवल इतना ही सीख पाए हैं। आगे क्या सीखेंगे, आप जानें, राम जानें।"[16]

शिव नारायण सिंह जब पात्रों से संवाद करते हैं तो अपनी बोध कथाओं के माध्यम से स्वस्थ जीवन शैली, स्वस्थ आहार, निर्मल मन, पर्यावरण की शुद्धता, नदियों की स्वच्छता, ग्लोबल वार्मिंग, पृथ्वी दिवस, जैव विविधता का संरक्षण, मनोबल, अधिकार, कर्तव्य, इच्छाशक्ति, विनम्रता, आदत, सैद्धांतिक और व्यावहारिक ज्ञान, लघुता, प्रभुता, ईमानदारी, आदर्श, यथार्थ, भौतिकता, आध्यात्मिकता, जरूरत, शांति, नीयत, नियति, यश, अपयश, गुरुदक्षिणा, सत्य, प्रतिशोध, लगनशीलता इत्यादि का बोध कराते हैं। यह अनवरत प्रक्रिया है।

पर्यावरण को शुद्ध किए बिना, जैवविविधता का संरक्षण किए बिना, भेदभाव को मिटाए बिना, अहिंसक हुए बिना, शिक्षा को सर्वजन सुलभ किए बिना, समानता की स्थापना किए बिना मानव मुक्ति संभव ही नहीं है। मुक्ति अकेले की नहीं होती है। इसलिए शिव नारायण सिंह जी की बोध कथाओं में विषय वैविध्य मिलता है। वह उन भोले-भाले लेखकों में से नहीं हैं जो एक बार लिखकर मुक्त हो जाते हैं। संवाद करने में, लेखन में, व्यवहार में, सहज जीवन में, पत्रिका में और संस्था के कार्यों में लगातार उनके सृजन की अभिव्यक्ति होती रहती है।

कुशीनगर का बार-बार उल्लेख करने से यह ज्ञात होता है कि वह भगवान बुद्ध के अधिक निकट हैं। उनसे कहीं गहरे प्रभावित हैं। जो बुद्ध के निकट है वह विश्वशांति की बात करेगा ही। वही मानव मुक्ति के प्रश्न को गंभीरता से ले सकता है। वही मुक्त हो सकता है। वही मुक्त कर सकता है। वही काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर नामक मनुष्य के छ: शत्रुओं पर विजय दिला सकता है। बुद्ध, महावीर, कबीर, तुलसी, राम, कृष्ण इत्यादि की कथाओं के माध्यम से, उद्धरणों के माध्यम से वह अपनी बातों को स्पष्ट करने की कोशिश करते हैं। उनकी बातों में, बोधकथाओं में कोई घुमाव नहीं। कोई उलझन नहीं। कोई लाक्षणिकता नहीं।

वे सीधे कहते हैं- जिन शब्दों से, जिन कथाओं से उनका कथ्य संप्रेषित हो जाए, वह उसी का सहारा लेते हैं। उसी को वे साहित्य भी कहते हैं, जिससे बोध जाग्रत हो जाए। जब लोगों ने उनको साहित्यकार या कथाकार कहना शुरू कर दिया तब वह विनम्रतापूर्वक कहते हैं कि "मेरे अपने शब्दों में अपनी भावनाओं और अपने विचारों को बोलकर या लिखकर, सहज और सुंदर ढंग से दूसरों तक संप्रेषित करना, यही तो साहित्य है, और मैं यही कर रहा हूँ। मैं अपनी जीवन चर्या, अपने डेली रूटीन में, अपने विद्यार्थियों के बीच अपनी बात कहता हूँ और वे ही बातें अगर साहित्य हो जाएं, आप मुझे साहित्यकार मानें तो यह मेरा अहोभाग्य है। लेकिन मेरा अपना ऐसा कुछ नहीं है।"[17]

कभी-कभी यह बात बिल्कुल वैसी ही लगती जैसे तुलसीदास कह रहे हों 'कवित विवेक एक नहीं मोरे', जैसे कबीरदास कह रहे हों 'मसि कागद छुयो नही।' जब वह कहते हैं कि मैं तो गणित का अध्यापक हूँ। मुझे इतना सारा अध्ययन का अवसर ही नहीं था तो एक शोधार्थी होने के नाते शंका तो उपजती ही है, भले ही उनकी बात मान ली जाय। वेदों, उपनिषदों या अन्य शास्त्रों की पंक्तियों का प्रयोग बिना पढ़े कैसे किया जा सकता है। सबसे दिलचस्प बात यह है कि

बोधकथाओं में उनका सटीक प्रयोग हुआ है। इससे उनका अध्ययन तो सिद्ध होता ही है, परंपरा के प्रति सकारात्मक नजरिया भी साफ साफ दिखाई देता है।

परम्परा ने हजारों वर्षों से अपने भीतर जो भी सकारात्मक वाइब्रेशन इकट्ठा कर रखा है उसका शिव नारायण सिंह जी सकारात्मक उपयोग कर लेना चाहते हैं। जो भी नये-नये वैज्ञानिक अनुसंधान हो रहे हैं उसका उपयोग मानवता के हित में हो सके इसके लिए भविष्य की पीढ़ी को तैयार करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। शिव नारायण सिंह की बोध कथाएं व्यक्तित्व निर्माण का माध्यम हैं, अव्यवस्था से प्रतिरोध की सकारात्मक आवाज हैं, आध्यात्मिक शान्ति का मार्ग हैं, मूल्यपरक शिक्षा की नीव हैं।

'संपर्क-जुड़ाव' शीर्षक बोधकथा में वह एक राजा और एक कथाकार की कथा के माध्यम से परिवार के विघटन को दिखाते हैं और पारिवारिक जुड़ाव का आह्वान करते हैं। वह पुराने जमाने और नए पूँजीवादी जमाने के अंतर को बताते हुए कहते हैं कि "पहले जमाने के लोग रिश्तों को संभालते थे, सहेजते थे क्योंकि वे इसका अर्थ समझते थे। बाद के लोग रिश्तों का लाभ उठाने लगे, क्योंकि वे अपने को ज्यादा व्यावहारिक अर्थात् एड्वान्स समझने लगे। अब तो लोग रिश्ते तभी तक रखते हैं, जब तक उन्हें उससे लाभ होता है। अन्यथा उनके शब्दकोश से रिश्ते शब्द गायब हो चले हैं और यही कारण है कि अब मनुष्य से उसकी मनुष्यता दूर होती चली जा रही है।"[18]

'नियंत्रण' एक ऐसे मूर्तिकार की कथा है जो इतनी ठीक मूर्ति बनाता है कि यमराज भी नहीं जान सके कि वास्तविक व्यक्ति कौन है और मूर्ति कौन है। परन्तु अपनी एक कमी के कारण मारा गया। वह अपनी रचना में कमी बर्दाश्त नहीं कर सकता था। 'पृथ्वी दिवस' में कार्तिकेय और गणेश की पृथ्वी प्रदक्षिणा के बहाने पर्यावरण संरक्षण की बात कही गयी है। ग्लोबल वार्मिंग को कम करके धरती माता को बचाने की बात विद्यार्थियों से की गयी है। 'आदत' में दो मित्रों और नदी की बाढ़ तथा भगवान के प्रगट होने की कथा के माध्यम से विद्यार्थियों के लिए नियमित अनुशासन में रहकर काम करने का उपदेश दिया गया है। 'विनम्रता' में कटोरी और घड़े को पात्र बनाकर किसी भी वस्तु या स्थान को प्राप्त करने के लिए मनुष्य के अंदर पात्रता विकसित करने और विनम्र बने रहने का उपदेश दिया गया है।

'व्यावहारिक ज्ञान' में पंडित जी और नाविक की कथा के बहाने व्यावहारिक ज्ञान का उपदेश देना शिव नारायण सिंह का अभीष्ट है। 'मनोबल' कथा बहुत ही हृदयस्पर्शी है। इसमें युद्ध के समय अपनी सैन्य शक्ति को कमजोर देखकर राज्य का पुरोहित एक सिक्के का खेल करता है। जबकि राजा का सेनापति अपनी पराजय स्वीकार कर चुका होता है, पुरोहित का एक ट्रिक युद्ध में विजय दिला देती है। सिक्के में दोनों तरफ एक ही चिन्ह बना हुआ था। स्थिति ऐसी थी कि चित्त भी मेरी पट्ट भी मेरी। इसके माध्यम से वह अपने सैनिकों का मनोबल बढ़ाता है जिससे कम संख्या में होने के बावजूद भी वह विजयी हो जाते हैं।

शिव नारायण सिंह जी पुरानी कथाओं के पात्रों का प्रयोग भी करते हैं और नए पात्रों का सृजन भी करते हैं। 'स्वप्न और यथार्थ' इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। एक सिद्धांत को, एक परिभाषा को, आदर्श और यथार्थ के समन्वय को, एक संतुलित जीवन दृष्टि को समझाने के लिए अब तक की सबसे अच्छी कथा 'स्वप्न और यथार्थ' ही हो सकती है। ऐसे ही 'लकड़हारा' की कथा में मृत्यु जैसे एक पात्र का सृजन भी किया गया है। इन लघु कथाओं को या कह लीजिए बोध कथाओं को शिव नारायण सिंह श्रेष्ठ कोटि के बीज मानते हैं जो किसी उपाय से यदि मनुष्य के मन मस्तिष्क में बोए जा सकें, तो निश्चित ही वे श्रेष्ठ कोटि की मानवता को जन्म देंगे। क्योंकि इनमें इतना कुछ है जो मनुष्य का परिमार्जन कर उसे एक आदर्श जीवन देने में पूर्णत: सक्षम ही नहीं, बल्कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी को संस्कारित कर सकने की अभूतपूर्व क्षमता से परिपूर्ण है।

सामाजिक विघटन के इस दौर में वह प्राचीन भारत की गौरव गाथा गाकर संतुष्ट नहीं हो जाते, अतीत का राग ही नहीं अलापते बल्कि अपने वर्तमान को पहचानकर जीवन में मनुष्यता को पुनर्स्थापित करने की लालसा लेकर एक बहु आयामी जीवन दृष्टि के सहारे प्रेरक कथाओं का सृजन करते हैं। ये प्रेरक कथाएं उन नैतिक मूल्यों का आधार खोजती हैं जो अपने पूर्ण रूप में भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनके माध्यम से आँखों में सुखद भविष्य का स्वर्णिम स्वप्न और अंत:करण में अदम्य उत्साह लिए किशोरवय बाल समूह को उत्साहित कर श्री शिव नारायण सिंह भविष्य की समस्याओं के प्रति सचेत भी करते हैं और नव निर्माण के लिए प्रेरित भी। वह अपने विद्यार्थियों से कहते हैं कि "समस्या केवल समस्या होती है। न तो बड़ी होती है, न तो छोटी होती है। समस्या मतलब समस्या न बड़ी न छोटी। भेद करने वाले का एटीट्यूड छोटा-बड़ा होता है।"[19]

पुन: संसाधनों के अभाव में चिंतित विद्यार्थियों के मन में आत्मविश्वास का संचार करते हुए कहते हैं कि "आप महत्त्वपूर्ण हैं, न कि संसाधन महत्त्वपूर्ण हैं। संसाधन कुछ भी नहीं कर सकता, करने वाले आप हैं। लेकिन करने के लिए जो सबसे जरूरी है, वह है अभाव। जहाँ अभाव नहीं है, वहाँ नया कुछ भी नहीं है। आपको अपने अंदर अभाव उत्पन्न करना होगा। जिस दिन आपको महसूस होगा, आप अभाव में हैं, आप निश्चित रूप से कुछ नया करेंगे।"[20]

शिव नारायण सिंह का ध्यान शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण एवं मानसिक शांति की तरफ हमेशा रहा है। इन दिनों की शिक्षा व्यवस्था जो धन पर केंद्रित है, उसमें धन के पीछे पड़े हुए लोग उम्र गुजार देते हैं बीमारियों में। वह पैसा कमाने के चक्कर में अपना स्वास्थ्य खो देते हैं और फिर स्वास्थ्य खरीदने के चक्कर में सारा-का-सारा पैसा खर्च कर देते हैं। स्वास्थ्य को खोकर धन और आलीशान बंगलों की फिराक में रहने वाले लोगों की स्थिति ऐसे ही है जैसे कोई मूर्ख कामधेनु को छोड़कर कहीं और दूध की खोज में भटक रहा हो। तुलसीदास जी ने लिखा है- जे जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आक फिरहिं पय लागी।।

इन सब संदर्भों को स्पष्ट करने के लिए श्री शिव नारायण सिंह कभी-कभी हास्य का प्रयोग भी करते हैं। बहुत शिष्ट हास्य भी उनकी कथाओं का माधुर्य है। भौतिकता की होड़ में जो परिभाषा सफलता और असफलता की बना दी गयी है उस पर व्यंग्यात्मक मुस्कान के साथ कहते हैं कि "तो सफलता की परिभाषा इस विशिष्ट बोध से कहीं ज्यादा सटीक समझ में आती है कि व्यक्ति अगर चालीस वर्ष का हो गया हो और उसे शुगर, ब्लड प्रेशर और हार्ट अटैक न हुआ हो तो निश्चित ही वह असफल व्यक्ति है। सफल व्यक्ति का मतलब जिसने हजारों चोरियाँ, लाखों बेईमानियाँ,करोड़ों मक्कारियाँ करके खूब धन इकट्ठा कर लिया हो और पकड़ा न गया हो तो समझो वह सफल व्यक्ति है।"[21]

स्वास्थ्य की सर्वोत्तम परिभाषा बताते हुए वह कहते हैं कि -"मन-निर्मल, तन स्वच्छ, बुद्धि-शांत। मोह की जगह स्नेह, लोभ की जगह संतोष, क्रोध की जगह क्षमा, काम का प्रेम में, अहंकार का नम्रता में, छल-कपट का सरल चित्त में परिवर्तन ही स्वास्थ्य है।"[22]

जैसे तुलसी के राम कह रहे हों

'मोंहि कपट छल छिद्र न भावा।'

सन् 2013 में प्रकाशित किताब 'मूल्यों के निर्माण कलश में' शिव नारायण सिंह पर विभिन्न विद्वानों द्वारा कई आलोचनात्मक बातें कही गयी थी। उसमें कुछ प्रशंसा है, कुछ आलोचना है और कुछ सुझाव। प्रखर मार्क्सवादी आलोचक प्रो. प्रणय कृष्ण ने 'आँधियों के बीच एक दिया' शीर्षक लेख में पहले प्रशंसा की और बाद में कुछ सुझाव भी दिए। उनके अनुसार आज जबकि मानवता के सारे घाव खुल गए हैं, अंधेरा कायम हो रहा है तब श्री शिव नारायण सिंह 'आँधियों के बीच एक दिया' जलाकर चल रहे हैं। परंतु उन्होंने आगाह करते हुए कहा है कि "धार्मिक मिथकों

के इस्तेमाल के खतरे ये हैं कि इनमें लिपटे कई अंधविश्वास भी चले आते हैं, जिस पर प्रश्न चिन्ह लगाना जरूरी है।"[23]

उन्होंने यह भी कहा था कि "भारत में इस्लाम और सूफी मत की तमाम बोध कथाएं प्रचलित हैं, इनका उपयोग इन पुस्तकों में लगभग नहीं हुआ है। हो सकता है वे उन्हें आने वाले खंडों में जगह दें, क्योंकि उनकी यह यात्रा नित प्रति आगे बढ़ रही है। मिथकों और पुराकथाओं के इस्तेमाल में हरदम यह सावधानी बरती जानी चाहिए कि हम देखें कि वे आज के समय के सवालों को संबोधित करने में प्रतीकवत पुनर्व्याख्या के लायक हैं या नहीं।"[24]

हम अपने लेख में यह पहले ही बता चुके हैं कि शिव नारायण सिंह साइंस को छोड़ते नहीं हैं लेकिन शास्त्र को लेकर उन्हें चलना है। वह नवीन और प्राचीन के सार को गह लेना चाहते हैं। उसी संग्रह 'मूल्यों के निर्माण कलश' में प्रो. दिनेश कुशवाह का लेख 'बोध कथाओं का नया संसार रचता कर्मयोगी' शीर्षक से शामिल है। वह श्री शिव नारायण सिंह की बोधकथाओं में आधुनिक शिक्षा और प्राचीन गुरुकुल प्रणाली के योग को रेखांकित करते हैं। उनका कहना है कि "वे आधुनिक शिक्षा और गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली का मणिकांचन योग करना चाहते हैं, लेकिन आधुनिक और आश्रम प्रणाली की शिक्षा व्यवस्था में जो जड़ताएं दिखाई देती हैं, उन्हें समूल नष्ट करना चाहते हैं।"[25]

प्रखर मार्क्सवादी आलोचक डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने शिव नारायण सिंह जी के शिष्यों से किए जाने वाले संवादों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वह इनके प्रयत्नों को रवीन्द्रनाथ टैगोर और प्लेटो की परंपरा से जोड़ते हैं। उन्होंने लिखा है – "शिव नारायण सिंह का शिक्षा संबंधी प्रयोग रवीन्द्रनाथ टैगोर के शिक्षा संबंधी प्रयत्नों और प्रयोगों की याद दिलाता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर बहुत बड़े आदमी थे, बड़े होने के सभी अर्थों में – इसलिए उनका प्रयत्न और उनके प्रयोग भी बड़े थे तथा उसके परिणाम भी बड़े निकले। शिव नारायण सिंह उतने बड़े आदमी नहीं हैं लेकिन उनकी मूल चिंता, चेतना और कोशिश वैसी ही है जैसी रवीन्द्रनाथ टैगोर की थी।"[26]

पुन: "भारतीय ज्ञान परंपरा में जो स्थान और महत्त्व उपनिषदों का है वही स्थान और महत्व पश्चिम की ज्ञान परंपरा में प्लेटों के संवादों का है। शिव नारायण सिंह अपने छात्रों से जो संवाद करते हैं – उसका सम्बन्ध एवं स्वभाव उपनिषदों की संवाद धर्मिता से है और प्लेटों के संवादों से भी।"[27]

यजुर्वेद की पंक्ति 'संसार दीर्घ रोगस्य सुविचारौ महौषध:' को उद्धृत करके शिव नारायण सिंह जी ने इस संसार में विचार की महत्ता को पुन: प्रतिपादित किया है। उनकी बोध कथाएं इसी विचार प्रक्रिया का प्रतिफल हैं। वह इन कथाओं और अपने कविता संग्रह 'समय सिंधु के पार' के माध्यम से लगातार उद्बोधन करते हैं। वह एक शिक्षक की भूमिका में अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करते हैं। 'समय सिंधु के पार' में एक स्थान पर वह कहते हैं –"तुम बढ़ो ऐसे कि जैसे, नभ तुम्हें मस्तक नवाए। प्रगति पथ पर मैं तुम्हें, आगे बढ़ाने आ गया हूँ।।"[28]

इतना सारा ज्ञान देने, इतनी सारी कथाएं सुनाने और इतना सारा व्याख्यान देने के बाद वही दूसरी जगह वह कहते हैं कि-

"मेरी बातों में मत आना।
अपनी ही तुम राह चुनो।।"[29]

इन सब संदर्भों को समग्रता में देखने पर ऐसा लगता है कि जैसे उम्र भर अपने आनंद जैसे शिष्यों को मार्ग दिखाने, उपदेश देने के बाद अपने जीवन के अंतिम दिनों में बुद्ध कह रहे हों कि 'अप्प दीपो भव।' अंतत: तुम्हारा अपना विवेक ही काम आएगा। अंतत: तुम्हीं अपने लिए उत्तरदायी होगे। अंतत: तुम्हारा तरीका ही अपना तरीका होगा। अंतत: तुम्हारा बोध ही अपना बोध होगा। मैं तो सिर्फ रास्ता दिखाऊँगा।

निष्कर्ष- ईश्वर में अपार आस्था रखने वाले गणितज्ञ, कवि, कथाकार शिव नारायण सिंह, जिनके "अंतर्मन का फलक ग्रामीण संस्कृति से होते हुए अत्याधुनिक वैज्ञानिक जीवन तक फैला हुआ है।"[30] बोधकथा

साहित्य के विषय में हम कह सकते हैं कि वह वर्तमान दुनिया से अलग एक नवीन दुनिया बसाने का दृढ़ सूत्र लेकर अवतरित हुए हैं। उनकी कथाओं में कोई कटुता, कोई बैर नजर नहीं आता। परन्तु यह एकदम स्पष्ट है कि वह इस वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के स्थान पर एक नयी शिक्षा व्यवस्था की स्थापना करना चाहते हैं। उनका विजन बहुत बड़ा है। यह उनके व्यक्तिगत प्रयासों से भी स्पष्ट दिखाई दे रहा है। वह लगातार इस दिशा में अथक परिश्रम कर रहे हैं। वह आशावादी हैं। उनकी आशाओं का प्रतीक यह शिवलोक है।

संदर्भ सूची -

1. शिव नारायण सिंह, मेरे प्रिय जागो (प्रथम संस्करण सितंबर2012), प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, उ. प्र. : 119
2. शिव नारायण सिंह, उद्धृत, 'मूल्यों के निर्माण कलश' (प्रथम संस्करण : 2013), प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली : 111
3. शिव नारायण सिंह, साक्षात्कार, 'मेरे प्रिय जागो' : 130
4. देखें- हर बोधकथा का अंतिम वाक्य
5. देखें - 'मेरे प्रिय जागो' संग्रह का अंतिम वाक्य
6. शिव नारायण सिंह, मेरे प्रिय जागो : 119
7. शिव नारायण सिंह, अप्प दीपो भव, 'विद्यार्थियों से ... संचयन' (प्रथम संस्करण-अप्रैल 2019), प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, उ. प्र. : 293
8. शिव नारायण सिंह, इच्छापूर्ति, 'विद्यार्थियों से ... संचयन' : 255
9. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से ... संचयन' : 110
10. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से ... संचयन' : 158
11. शिव नारायण सिंह, विश्व शांति में मूल्यपरक शिक्षा की भूमिका, 'मेरे प्रिय जागो' : 83
12. शिव नारायण सिंह, विश्व शांति में मूल्यपरक शिक्षा की भूमिका, 'मेरे प्रिय जागो' : 83
13. शिव नारायण सिंह, 'मेरे प्रिय जागो' : 11
14. शिव नारायण सिंह, 'मेरे प्रिय जागो' : 73
15. शिव नारायण सिंह, 'मेरे प्रिय जागो' : 72
16. शिव नारायण सिंह, 'मेरे प्रिय जागो' : 15
17. शिव नारायण सिंह, साक्षात्कार, 'मेरे प्रिय जागो' : 132
18. शिव नारायण सिंह, संपर्क-जुड़ाव, 'विद्यार्थियों से... संचयन' : 409
19. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से... संचयन' : 152
20. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से... संचयन' : 169
21. शिव नारायण सिंह, 'मेरे प्रिय जागो' : 123
22. मेरे प्रिय जागो : 113
23. डॉ. प्रणय कृष्ण, आँधियों के बीच एक दिया, 'मूल्यों के निर्माण कलश' : 106
24. डॉ. प्रणय कृष्ण, आँधियों के बीच एक दिया, 'मूल्यों के निर्माण कलश' : 107
25. दिनेश कुशवाह, बोध कथाओं का नया संसार रचता कर्मयोगी, 'मूल्यों का निर्माण कलश' : 110
26. डॉ. मैनेजर पांडेय, 'मूल्यों के निर्माण कलश' : 15
27. डॉ. मैनेजर पांडेय, 'मूल्यों के निर्माण कलश' : 16
28. शिव नारायण सिंह, समय सिंधु के पार (प्रथम संस्करण-दिसंबर 2016), प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, उ. प्र. : 39
29. शिव नारायण सिंह, 'समय सिंधु के पार' : 44
30. प्रोफेसर रामप्रकाश कुशवाहा, भूमिका, 'समय सिंधु के पार' : 12

शिव नारायण सिंह की कथा-कृतियों के आलोक में बोधकथा: अर्थ, आधार, और आयाम

धीरज कुमार
शोधार्थी
बोधकथा शोध संस्थान
शिवलोक, गोरखपुर उ.प्र.
शोधछात्र, धर्म एवं दर्शन शास्त्र विभाग, कला संकाय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी उ.प्र.

शोध सार- भारतीय शिक्षा परंपरा में अनेक माध्यमों से शिक्षा के प्रसाद-वितरण की व्यवस्था रही है और कथा-संवाद उनमें से सबसे रुचिकर व छात्र-प्रिय मार्ग रहा है। उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के सामान्य से दिखने वाले असामान्य शिक्षाविद शिव नारायण सिंह भी अपने शिक्षा-प्रसार के प्रकल्प में इस कथा- मार्ग का नियमित और निरंतर उपयोग करते आ रहे हैं। जिन कथाओं के प्रयोजन में शिक्षा के प्रसार के साथ ही समझ को गढ़ने का प्रयास संलग्न हो, उन्हें 'बोधकथा' कहते हैं।

शिव नारायण सिंह के द्वारा आहूत शिक्षा-यज्ञ में स्वयं उनके द्वारा, अनूठे और अद्भूत कथा-मार्ग पर चलते हुए, इन्ही बोधकथाओं के समूह के दस शिल्प-स्तम्भ प्रकट हो चुके हैं। यह शोध आलेख इन्हीं कथा-शिल्पों की विवेचना कर इन स्तंभों के अर्थ की गहराई और इनके आधार की पड़ताल करने का एक प्रयास है। प्रस्तुत आलेख अपनी प्रस्तावित सीमा में रहते हुए बोधकथाओं की परिधि का आकलन और उनकी संभावनाओं का अवलोकन करने का एक विनम्र साहस है।

प्रस्तुत अध्ययन व्याख्यानात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है, जिसमें कथाओं का पाठ-विश्लेषण करते हुए बोधतत्व की विविध अभिव्यक्तियों को पहचानने का प्रयत्न किया गया है। अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि शिव नारायण सिंह की कथाएँ मूल्य निर्माण, सामाजिक संवेदना, और नैतिक दायित्वबोध को केंद्र में रखते हुए पाठकों में आत्म-मंथन और चेतना जागरण की संभावना उत्पन्न करती हैं। इस दृष्टि से उनके कथा-साहित्य में बोधकथा की अर्थ-व्यापकता, सांस्कृतिक-दार्शनिक आधार और बहुआयामी संरचना के संकेत स्पष्ट मिलते हैं।

बीज शब्द- कथा-संवाद, मूल्य परक शिक्षा, बोधि, जीवन मूल्य, जगत-व्यवहार,आत्म-बोध, पूर्णता, जगत-बोध, जाग्रत जीवन

मुख्य आलेख- शिक्षा मानव-विकास के केंद्र में रहा है। यह मनुष्य के जीवन तथा उसकी चेतना की उन्नति, प्रगति अथवा परिवर्तन-मात्र का प्रमुख स्रोत व उत्प्रेरक रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में लंबे समय से भारत देश का विशेष स्थान रहा है। भारत के भीतर की बात करें तो अलग-अलग क्षेत्र-विशेष का नाम व योगदान स्वतः ही ध्यान में आता है, जिनमें द्रविड़-क्षेत्र, कश्मीर की धरा, मध्य-क्षेत्र, मगध-क्षेत्र, बंग-भूमि इत्यादि प्रमुख हैं। उत्तर- भारत भी जिसका प्रतिनिधि प्रदेश वर्तमान में उत्तर-प्रदेश है, शिक्षा के क्षेत्र में प्राचीन काल से आधुनिक व समकालीन समय तक विशिष्ट स्थान और महत्त्व रखता है। काशी, प्रयाग, श्रावस्ती इत्यादि इसके मुख्य शिक्षा-केंद्र रहे हैं।

यूं तो भारत के प्रायः प्रत्येक हिस्से की तरह ही वर्तमान उत्तर प्रदेश के प्रत्येक क्षेत्र-विशेष का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान का अपना इतिहास और महत्व रहा है, किन्तु उत्तर प्रदेश के 75 जिलों में से एक देवरिया का काशी, प्रयाग, अथवा श्रावस्ती की भाँति वृहद

मानचित्र पर नाम अंकित नहीं दिखाई पड़ता है। इसका प्रथम दृष्ट्या कारण यह जान पड़ता है कि काशी इत्यादि भूभागों की तरह यहाँ ऐतिहासिक और विराट प्रयास नहीं हुए अथवा कम हुए। वस्तुतः छोटे-छोटे ही सही गहरे व गंभीर प्रयत्न अवश्य होते रहे जिनमें कुछ अति-महत्त्वपूर्ण कार्य भागीरथी प्रयास की श्रेणी में चिन्हित किए जाने योग्य रहे हैं। इन्हीं में से एक है - शिव नारायण सिंह का शिक्षा क्रांति से समाज परिवर्तन और व्यक्ति व राष्ट्र निर्माण का समकालीन प्रयास।

शिव नारायण सिंह एक विद्यालय के संस्थापक प्रधानाचार्य और संचालक हैं। उनका उद्देश्य भी विद्यालय में पढ़ने वाले बच्चों को बेहतर शिक्षा देकर एक शिक्षित व्यक्ति और सभ्य नागरिक बनाने का है। किन्तु विद्यालय संचालन और शिक्षा प्रदान करने का उनका यही एकमात्र उद्देश्य नहीं है। इसके अतिरिक्त वे अपने विद्यार्थियों को एक आदर्श मानव, जाग्रत जीव और परम पूर्णता की ओर अग्रसर प्राणी बनाने के संकल्प-सिद्धि की कामना करते हैं। इसी लक्ष्य की पूर्ति को ध्यान मे रखते हुए शिव नारायण सिंह 'रूटीन सिलेबस' के साथ ही मूल्यों और नीति-संबंधी ज्ञान की शिक्षा को अपने विद्यालय के प्राथमिक दायित्व और आवश्यक अंग के तौर पर स्थापित करते हुए आगे बढ़ते रहे हैं। वे विद्यार्थियों को विज्ञान, गणित, समाज-शास्त्र, कम्प्यूटर, कला इत्यादि के साथ-साथ नीति, सामाजिक दायित्वों, जीवन के मूल्यों तथा दुनिया के व्यावहारिक व्यवस्थाओं व समस्याओं से संबन्धित शिक्षाएँ भी अनिवार्य रूप से उपलब्ध करने का यत्न करते आ रहे हैं।

विद्यालय के 'रूटीन सिलेबस' के विषयों जैसे- गणित, भूगोल, इतिहास, विज्ञान, कम्प्यूटर इत्यादि की शिक्षा मुख्यतः विद्यालय के अध्यापकों का दायित्व होता है और इसकी शिक्षा वे पारंपरिक व प्रचलित आधुनिक माध्यमों व तरीकों से देते हैं। परंतु नीति, मूल्य, व्यक्ति-बोध, नागरिक चेतना इत्यादि विषय जो शिव नारायण सिंह के विद्यालय के बुनियादी व आवश्यक तत्त्व हैं- इनकी शिक्षा वे प्राथमिक रूप से स्वयं अपने अनूठे व आकर्षक ढंग से छात्रों को प्रदान करते हैं और इसकी शिक्षा का माध्यम होता है उनका छात्रों के साथ किया जाने वाला 'सीधा संवाद'। किन्तु संवाद के कई प्रकार व रास्ते हो सकते हैं। संवाद प्रश्नोत्तरी, चर्चा, विमर्श, प्रवचन या वाद-विवाद, कई रूपों में हो सकता है। शिव नारायण सिंह ने संवाद के जिस रूप का चयन किया है वह है - 'कथा-संवाद'।

कथा के द्वारा शिक्षा देने की परंपरा यूं तो अत्यंत प्राचीन है। उपनिषदों, पुराणों, बुद्ध के जातक-कथाओं, पंचतंत्र इत्यादि इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। किन्तु वर्तमान समय में शिक्षा के इस विधि का बहुत उपयोग दिखाई नहीं देता है। कथाओं का सृजन व प्रयोग मनोरंजन, हास्य, कला के क्षेत्र में तो दिखाई देता है लेकिन कहीं, कोई इनके माध्यम से ज्ञान का सृजन या प्रसार करे ये बहुत अधिक ध्यान देने पर भी यदा-कदा ही कभी सुनने में, समाचार-पत्रों में, पढ़ने में प्रत्यक्ष होता है। कथाओं के द्वारा जीवन-चर्या, नीति, आचरण, पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्व-बोध, राष्ट्रीय-चेतना, आत्म अवलोकन की शिक्षा देने के उदाहरण वर्तमान समय में नहीं के बराबर ही दृष्टिगोचर होते हैं, विद्यालय में इनके प्रयोग के विषय में तो सोचना भी हास्यास्पद व अजीब लगता है।

परन्तु शिव नारायण सिंह शिक्षा के क्षेत्र में कथाओं का प्रयोग पिछले तीन दशकों से निरंतर कर रहे हैं। वे इन कथाओं के माध्यम से ही छात्रों को जीवन, समाज और सम्पूर्ण मानवता के विषय में मौलिक और गंभीर विमर्श की ओर बड़ी सरलता से दिशा दिखाने और उनका पथ प्रदर्शित करने का कार्य किए जा रहे हैं। उनकी कथाएँ न केवल किसी विशेष विषय की जानकारी नीति, मूल्य इत्यादि का ज्ञान कराती हैं, बल्कि छात्रों की समझ को गढ़ने का; उनके बुद्धि को रूपांतरित करने का; उनके ज्ञान के आधार को, सूचनाओं की जगह अनुभव पर केन्द्रित करते

हुए, सुदृढ़ करने का तथा उन्हें जीवन की वास्तविक समझ से साक्षात्कार कराने का कार्य करती हैं। इस कारण उनकी कथाओं को केवल सामान्य शैक्षणिक अथवा नीति- परक, मूल्य-संबंधी कथा के रूप में देखना अन्याय होगा; अपितु उनकी कथाओं में बोध के बीज स्पष्ट दिखाई देते हैं, अतः इन्हें 'बोधकथा' कहना अतिश्योक्ति न होगा।

प्रस्तुत शोध आलेख का मुख्य उद्देश्य शिव नारायण सिंह की कथा-कृतियों के आलोक में 'बोधकथा' की संकल्पना का अर्थगत रेखांकन करना है। इस शोध का प्राथमिक लक्ष्य उनके कथा-साहित्य के सूक्ष्म पाठ- विश्लेषण के माध्यम से 'बोधकथा' की अवधारणा का अर्थ-प्रकाशन, बोधकथा का मूल तत्त्व क्या है ? उसकी आत्मा क्या है ? इसकी पड़ताल करना और बोधकथा की संभावनाओं, उनके विविध उपियोगिताओं और इस प्रकार उनकी सीमाओं का आकलन करना है।

बोधकथा का सामान्य परिचय- बोध अर्थात् समझ, परन्तु सामन्य अर्थों में बोध शब्द से समझ, विवेक या ज्ञान का अभिप्राय होता है। कथा वो, जो कही जाय, बताई जाय अर्थात् बात। सामन्यतया इसका तात्पर्य कहानी या किस्सा निकाला जाता है। इस प्रकार बोधकथा का आशय है- बोध अर्थात् समझ, विवेक या ज्ञान का सृजन, संचार, और सम्पादन की संभाव्यता से समाहित कथाएँ अर्थात् कहानी या किस्सा। बोधकथा इन तीनों या तीन में से किन्हीं एक संभावना से सुसज्जित हो सकती है। वह स्वयं समझ/सूझ के बीज बो सकती है या किसी अंकुरित समझ, संरचना अथवा ज्ञान का पोषण व प्रचार कर सकती है या किसी पुष्पित-पल्लवित प्रज्ञा-पौध की छंटनी व सौंदर्यीकरण में सहायक हो सकती है।

यहाँ 'समझ' शब्द अतिमहत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके दो भेद किए जा सकते हैं। पहला, समझ किसी ज्ञान, तथ्य, जानकारी, शिक्षा, एहसास, दृष्टि इत्यादि का सूचक हो सकता है, और दूसरा, यह बौद्धिक कौशल, चेतना की अवस्था या जागृत-दृष्टि का संकेतक हो सकता है। इस प्रकार बोधकथा या तो किसी विषय की समझ विकसित करने से संबन्धित हो सकता है या 'समझने की समझ' विषय से संबद्ध हो सकता है।

शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ- शिव नारायण सिंह की बोधकथाओं की उत्पत्ति अत्यंत ही प्राकृतिक ढंग से, संघटनात्मक रूप में तथा किसी कृत्रिम या योजना-बद्ध प्रक्रिया के अभाव में हुआ है। इनका सृजन-स्थल कथाकार और उनके विद्यार्थियों के मध्य, प्रार्थना-सभा में होने वाले संवाद-क्रिया की भूमि रही है। शिव नारायण सिंह अपने विद्यार्थियों के साथ नियमित रूप से कथा-संवाद के भागी होते रहे और निरंतर उनके कथात्मक वचन एक विहंगम और विपुल कथा-साहित्य के रचनाक्रम को आगे, और आगे बढ़ाते गए। इसी निरंतरता का स्वाभाविक परिणाम यह रहा कि उनके कथा-साहित्य का विस्तार होता चला गया, जो अब तक 'विद्यार्थियों से...' शीर्षक से दस खंडों में प्रकाशित हो चुका है।

जिसे अद्यतन पढ़ने के क्रम में कोई भी उनमें से ऐसे उद्धरणों को आत्मसात् करने की कोशिश तो कर ही सकता है-

"आप अपने पुरुषार्थ को जागृत करते हैं आपको लगता है आपमें कुछ है आप भी कुछ कर सकते हैं तो निश्चित जानिए आप बहुत कुछ कर सकते हैं।"[1]

"जीवन में अगर आपको एक क्षण भी ऐसा मिलता है कि आप स्वयं को मानव से महामानव सिद्ध कर सकें तो इससे बड़ी उपलब्धि कोई और नहीं हो सकती।"[2]

"यही वह वय है, यही वह अवस्था है, यही वह उम्र है, यही वह समय है, यही वह क्षण है जब आप अपना लक्ष्य निर्धारित करके वह सब बन सकते हैं जो बनना चाहते हैं।"[3]

"हमारे अन्दर पात्रता है हमने अपने को पात्र

बनाया है तो यह शाश्वत सत्य जानिए जब पात्रता जन्म लेती है सब कुछ उबलब्ध हो जाता है।"[4]

"जरा सोचें विचार करें कोई ऐसा काम चुनें कोई ऐसा लक्ष्य निर्धारित करें, कोई ऐसा उद्देश्य बनायें और दृढ़ संकल्प से उसे क्रियान्वित करें जिससे आप इस दुनिया को बेहतर-से-बेहतर बना सकें।"[5]

शिव नारायण सिंह अपने अनुभवों को ही विभिन्न प्रसंगों, पात्रों, कथानक, चरित्रों, इत्यादि के माध्यम से कथा- स्वरूप में ढालते गए, लेकिन इनका विषय-वस्तु, इनकी आत्मा न केवल सामान्य कहानियों की प्रतीति-मात्र है, न ही केवल मनोरंजन के माध्यम से शिक्षाप्रद, ज्ञानात्मक प्रवंचना के द्योतक है। अपितु ये गूढ़ रहस्यवादी आभास को समेटे, गहरे अनुभूति के विषयों को प्रकाशवान करने की चेष्ठा करते तथा मानव हृदय की भावनात्मकता को मनुष्य की बौद्धिक प्रज्ञात्मकता से तादात्म्य का संबंध करने का संकल्प लिए, विचार-बीज है। इसी कारण 'शिव नारायण सिंह' कृत कथा-सागर को 'बोधकथा' कहना आवश्यक हो जाता है क्योंकि यह केवल भावना या सांसरिक समझ को ही नहीं अपितु मनुष्य की आत्मा, जो बोध का विषयी है, उसे भी पोषित करने का सामर्थ्य रखता है।

यही कारण है कि शिव नारायण सिंह की बोध कथाएं मानव मस्तिष्क को मथकर रख देती हैं उन्हें पढ़ने वाला वैसा ही आचरण करने लगता है यह मेरा ही नहीं उन लोगों का भी मत है जिन्होंने इसे पढ़ा है या फिर सुना है आप भी पढ़-सुनकर यही कहेंगे कि-

"बिना ध्यान के आपकी बुद्धि का विकास नहीं हो सकता, बिना दान के आपके अन्दर उदारता नहीं आ सकती, बिना क्षमा के आप दयालु नहीं हो सकते और बिना विश्वास के आपको सफलता नहीं मिल सकती।"[6]

"प्रार्थना के महत्त्व को समझिए उसके स्पन्दन को अपने अन्दर आत्मसात कीजिए और उसे जीवन का आधार बनाइए निश्चित ही आप कुछ ऐसा कर जायेंगे जो नया होगा।"[7]

"सहारा सहारा है सहारे को छोड़ो यह वास्तविक नहीं है। स्वयं में इतना दम भरो, स्वयं में इतना साहस भरो, स्वयं में इतना ताकत भरो, स्वयं में इतना विश्वास भरो कि वास्तविकता को पा सको।"[8]

"समय ही जीवन है, समय ही जीवन की गति है, समय ही जीवन की प्रगति है, समय ही जीवन की सफलता का सोपान है, समय ही वह पैमाना है; जिसने इसे साध लिया उसे और कुछ और साधने की आवश्यकता नहीं है।"[9]

"इस दुनिया की जो सर्वोच्च शक्ति है, सबसे दृढ़ शक्ति है, सबसे मजबूत शक्ति है; उसका जन्म स्थल है आपका मन।अगर आपने अपने मन को मजबूत कर लिया तो कोई बाधा आपको आपके लक्ष्य तक पहुंचने से नहीं रोक सकती।"[10]

बोधकथा का अर्थ- साहित्यिक परंपरा में बोधकथा को प्रायः नैतिक शिक्षा से जोड़कर देखा गया है, किन्तु यह दृष्टि बोधकथा के व्यापक और गहन स्वरूप को पूर्णतः अभिव्यक्त नहीं कर पाती। शिव नारायण सिंह की कथा-कृतियों के आलोक में बोधकथा का अर्थ केवल नैतिक उपदेश तक सीमित न होकर दृष्टि-विस्तार, चेतना-जागरण, और रूपांतरकारी अनुभव से जुड़ा दिखाई देता है। उनकी कथाएँ पाठक को यह नहीं बताती कि क्या करना चाहिए बल्कि उसे यह समझने की दिशा में ले जाती हैं कि क्यों और कैसे जीवन को अधिक अर्थपूर्ण बनाया जा सकता है।

शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ उपदेशात्मक नैतिकता के स्थान पर दृष्टि का निर्माण करती हैं। यह दृष्टि व्यक्ति को समाज, सम्बन्धों, सत्ता, मूल्य, और स्वयं के अस्तित्व को नए परिप्रेक्ष्य में देखने के लिए प्रेरित करती है। यहाँ बोधकथा एक ऐसी वैचारिक प्रक्रिया बन जाती है, जिसमें कथा के पात्र, स्थितियाँ और घटनाएँ पाठक के भीतर प्रश्न उत्पन्न

करती हैं। यह प्रश्नशीलता ही बोधकथा की मूल शक्ति है, जो उसे सामान्य नीति-कथा से भिन्न बनाती है।

इन कथाओं का बोध रूपांतकारी है। यह बोध पाठक के आंतरिक संसार में हस्तक्षेप करता है और उसके दृष्टिकोण, संवेदनाओं तथा मूल्य-बोध में परिवर्तन की संभावना उत्पन्न करता है। शिव नारायण सिंह की कथाएँ किसी निष्कर्ष को थोपती नहीं हैं, बल्कि अनुभव और आत्मचिंतन के माध्यम से पाठक को स्वयं निष्कर्ष तक पहुँचने का अवसर देती हैं। इस प्रकार बोधकथाएँ यहाँ मानसिक और वैचारिक परिवर्तन का माध्यम बन जाती हैं।

सैद्धांतिक रूप से देखें तो शिव नारायण सिंह की कथाओं में 'बोधकथा' का अर्थ ज्ञान के सम्प्रेषण से आगे बढ़कर समझ के निर्माण से जुड़ता है। यह समझ स्थिर नहीं, बल्कि गतिशील है, जो पाठक के जीवनानुभवों से संवाद करती हुई विकसित होती है। इसलिए उनकी बोधकथाएँ केवल नैतिक शिक्षा नहीं देती, बल्कि जीवन को देखने की नयी दृष्टि प्रदान करती हैं और पाठक के भीतर आत्म-मंथन की प्रक्रिया को सक्रिय करती हैं।

इस प्रकार शिव नारायण सिंह कि कथा-साहित्य के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 'बोधकथा' का सैद्धांतिक स्वरूप उपदेशात्मक नैतिकता से ऊपर उठकर दृष्टिपरक, अनुभवात्मक और रूपांतकारी साहित्यिक विधा के रूप में उभरता है।

बोधकथा का आधार- बोधकथा के वैचारिक आधार को समझने के लिए उसके दो घटकों- 'बोध' और 'कथा' के अंतर्संबंध को स्पष्ट करना आवश्यक है। यद्यपि शब्द-रचना की दृष्टि से बोधकथा इन दोनों के संयोजन से बनती है, तथापि वैचारिक स्तर पर इसका वास्तविक आधार 'बोध' ही है, जबकि 'कथा' मात्र उस बोध को संप्रेषित करने का माध्यम या संरचनात्मक ढ़ाँचा है। शिव नारायण सिंह की कथा-कृतियों के आलोक में यह तथ्य और अधिक स्पष्ट होकर सामने आता है कि यदि बोध अनुपस्थित हो, तो कथा केवल एक घटनात्मक या मनोरंजक आख्यान बनकर रह जाती है।

'बोध' का आशय यहाँ किसी एक निश्चित या स्थिर विचार- समूह से नहीं है, बल्कि वह एक ऐसी चेतनात्मक प्रक्रिया है, जो व्यक्ति और समाज को आत्मावलोकन की ओर प्रेरित करती है। यह बोध परंपरागत भी हो सकता है, जो सांस्कृतिक मूल्यों, जीवन-दर्शन और सामूहिक अनुभवों से उपजता और प्रगतिशील भी है, जो समय, सामाजिक परिवर्तन और नए यथार्थ से संवाद स्थापित करता है। इसी प्रकार यह बोध पुराना होते हुए भी समकालीन संदर्भों में नयी अर्थवत्ता ग्रहण कर सकता है तथा नया होते हुए भी परंपरा से जुड़ा रह सकता है। इस लचीलेपन और व्यापकता के कारण ही 'बोध' बोधकथा का मूल आधार बनता है।

इसके विपरीत 'कथा' का कार्य उस बोध को रूप देना, उसे संप्रेषणीय बनाना और पाठक तक पहुंचाना है। शिव नारायण सिंह की कथाओं में कथा-तत्त्व किसी जटिल शिल्प प्रदर्शन के लिए नहीं, बल्कि बोध को सहज, प्रभावी और ग्राह्य बनाने के लिए प्रयुक्त होता है। कथा का स्वरूप, पात्रों की रचना, घटनाओं की संरचना ये सभी तत्त्व बोध के अधीन रहते हैं, न कि उससे ऊपर। इस दृष्टि से कथा यहाँ साध्य नहीं, साधन है।

शिव नारायण सिंह की बोधकथाओं का आधार यह भी स्पष्ट करता है कि बोध किसी एक वैचारिक धारा में सीमित नहीं है। उनकी कथाओं में लोकबोध, नैतिक बोध, सामाजिक बोध और मानवीय बोध- सभी एक साथ उपस्थित रहते हैं। यही बहुस्तरीय बोध उनकी कथाओं को केवल कथात्मक रचना न बनाकर एक विचारोत्तेजक साहित्यिक अनुभव में रूपांतरित करता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि बोधकथा का वास्तविक आधार बोध की उपस्थिति, उसकी तीव्रता और उसकी दिशा में निहित है। कथा केवल उस बोध

को व्यक्त करने की संरचना है, माध्यम है। शिव नारायण सिंह की कथा-कृतियाँ इस वैचारिक स्थापना को पुष्ट करती हैं कि जहां बोध केंद्र में होता है, वहाँ कथा अपने आप बोधकथा का रूप ग्रहण कर लेती है।

बोधकथा का आयाम- शिव नारायण सिंह की कथा-कृतियों में 'बोधकथा' का स्वरूप किसी एक सीमित दायरे में बँधा हुआ नहीं है, बल्कि वह उतना ही व्यापक और विविधपूर्ण है , जितने विविध बोधतत्त्व उनकी कथाओं में सक्रिय रूप से उपस्थित हैं। उनके कथा-साहित्य में बोधकथा के आयाम एकरेखीय न होकर बहुआयामी हैं, जो मानव जीवन के मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक पक्षों से निरंतर संवाद करते हैं। इस दृष्टि से उनकी बोधकथाएँ जीवन के विभिन्न स्तरों पर चेतना के विस्तार की संभावनाएं निर्मित करती हैं।

इन कथाओं में एक प्रमुख आयाम मानसिक बोध का है। पात्रों के आंतरिक द्वंद्व, आत्मसंघर्ष और निर्णय-प्रक्रिया के माध्यम से पाठक को अपने ही मनोवैज्ञानिक ढांचों पर पुनर्विचार करने का अवसर मिलता है। यह बोध व्यक्ति के भीतर चल रही जड़ताओं, पूर्वाग्रहों और आत्मकेन्द्रित प्रवृत्तियों को पहचानने की दिशा में अग्रसर करता है। यहाँ बोधकथा मानसिक जागरण का माध्यम बनती है।

दूसरा महत्त्वपूर्ण आयाम सामाजिक बोध का है। शिव नारायण सिंह की कथाएँ व्यक्ति को समाज से पृथक नहीं करतीं, बल्कि उसे सामाजिक संरचनाओं, सम्बन्धों और दायित्वों के भीतर स्थित करती हैं। सत्ता, अन्याय, असमानता और संवेदनहीनता जैसे प्रश्न कथाओं के माध्यम से उभरते हैं और पाठक को सामाजिक चेतना के स्तर पर सक्रिय करते हैं। इस प्रकार बोधकथाएँ सामाजिक जागरण की भूमिका भी निभाती हैं।

इनके अतिरिक्त उनकी कथाओं में आध्यात्मिक बोध का आयाम भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। यह आध्यात्मिकता किसी संकीर्ण धार्मिक उपदेश के रूप में नहीं, अपितु आत्मानुभूति, करुणा, समत्व और अस्तित्वबोध के रूप में प्रकट होती है। इस स्तर पर बोधकथाएँ व्यक्ति को स्वयं से, प्रकृति से और व्यापक सत्ता से जोड़ने का प्रयास करती हैं।

बोधकथा के आयाम केवल व्यक्ति तक सीमित नहीं रहते। शिव नारायण सिंह की कथाओं में व्यक्तिगत से लेकर वैश्विक और मानवीय से लेकर दैवीय स्तर तक बोध का विस्तार देखा जा सकता है। व्यक्तिगत अनुभवों से उपजा बोध सामाजिक और वैश्विक संदर्भों से जुड़कर व्यापक अर्थ ग्रहण करता है। कहीं यह बोध मानवता के साझा सरोकारों की ओर संकेत करता है तो कहीं जीवन के दैवीय या परम तत्त्व की अनुभूति करता है।

इस प्रकार शिव नारायण सिंह की कथाओं में बोधकथा के आयाम, बोध की विविध प्रकृतियों के अनुरूप निरंतर विस्तारित होते हैं। उनकी बोधकथाएँ मानसिक जागरण से लेकर सामाजिक चेतना, आध्यात्मिक अनुभूति और वैश्विक मानवीय दृष्टि तक फैला हुआ एक व्यापक बोधक्षेत्र निर्मित करती हैं। यही बहुआयामी विस्तार उनके कथा-साहित्य में बोधकथा को एक सशक्त और समकालीन साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

निष्कर्ष- प्रस्तुत शोध आलेख में शिव नारायण सिंह की कथा-कृतियों के विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि 'बोधकथा' को केवल कथा-वाचन अथवा नैतिक शिक्षाओं के सीमित दायरे में बाँधकर नहीं देखा जा सकता है। उनके कथा-साहित्य के आलोक में 'बोधकथा' का अर्थ-विस्तार सामने आता है, जहाँ कथा मात्र घटनाओं का अनुक्रम न होकर जीवन, समाज, और अस्तित्व को देखने की एक समग्र दृष्टि प्रदान करती है। इस दृष्टि से बोधकथाएँ मनोरंजन या उपदेश का साधन न रहकर चेतना के विस्तार और समझ के निर्माण का माध्यम बन जाती हैं।

इस अध्ययन से यह भी प्रतिपादित होता है कि बोधकथा का वास्तविक आधार तत्त्वगत है, न कि केवल साहित्यिक या संरचनात्मक कौशल पर आधारित। शिव नारायण सिंह की कथाओं में कथा-शिल्प, भाषा, और संरचना, बोध के अधीन रहते हैं। यहाँ बोध केन्द्रीय तत्त्व है। वही कथा की दिशा, उद्देश्य, और प्रभाव को निर्धारित करता है। इस प्रकार बोधकथा का आधार कथात्मक चातुर्य में नहीं, अपितु उस बोध में निहित है, जो पाठक को आत्ममंथन और वैचारिक जागरण की ओर ले जाता है।

इसी क्रम में यह भी स्पष्ट होता है कि शिव नारायण सिंह की कथाओं में बोधकथा के आयाम अत्यंत व्यापक हैं। ये आयाम प्रेरणात्मक, मार्गदर्शक, और रूपांतरकारी होने के साथ-साथ सामाजिक, अस्तित्वगत, और दार्शनिक स्तरों तक विस्तृत है। उनकी बोधकथाएँ व्यक्ति के मानसिक जगत से लेकर सामाजिक संरचनाओं, मानवीय सम्बन्धों, और जीवन के दार्शनिक प्रश्नों तक को स्पर्श करती हैं। यह बहुआयामी विस्तार बोधकथा को एक जीवंत और समकालीन साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि शिव नारायण सिंह की कथा-कृतियों के आलोक में बोधकथा अपनी अत्यधिक संभावनाओं का साक्षात्कार करती है। उनके साहित्य में बोधकथा केवल कथात्मक अभिव्यक्ति न रहकर प्रेरणा, दिशा, और परिवर्तन का माध्यम बन जाती है। इस अध्ययन के निष्कर्ष यह संकेत करते हैं कि आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य में 'बोधकथा' को एक व्यापक, सशक्त, और अर्थपूर्ण विधा के रूप में पुनः समझे जाने की आवश्यकता है और इस संदर्भ में शिव नारायण सिंह का कथा-साहित्य एक महत्त्वपूर्ण वैचारिक आधार प्रदान करता है।

सन्दर्भ सूची-

1. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 01, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-164
2. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 03, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-109
3. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 04, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-129
4. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 06, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-614
5. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 05, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-345
6. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 03, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-108
7. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 03, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-235
8. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 06, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-685
9. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 03, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-219
10. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 04, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-246

शिव नारायण सिंह की बोध कथाओं में लोकपक्ष

शिवालिका सिंह कुशवाहा
शोधार्थी
बोधकथा शोध संस्थान
शिवलोक, गोरखपुर उ.प्र.

प्रस्तावना- दुनिया के हर समाज का अपना लोक होता है, अपनी संस्कृति होती है और अपनी परंपरा होती है। उसी संस्कृति और लोक-परंपराओं के अनुसार लोक कथाओं का जन्म होता है या ऐसे समझें कि प्रत्येक देश की लोक कथाएँ वहाँ की संस्कृति और परंपराओं के समानांतर चलती हैं। धीरे-धीरे समय की प्रगति के साथ-साथ उन कथाओं में थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन आता रहता है। ये कथाएं स्वयं ही अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए आवश्यकतानुसार अपने आप में कुछ नया जोड़ती चलती हैं। इसके लिए उन्हें एक सुयोग्य लेखक या कथाकार की आवश्यकता होती है, जो समय की चाल को समझने में निपुण हो, पुराने और नए का विवेक रखने वाला हो, शास्त्र और विज्ञान दोनों को साध लेता हो और सबसे बड़ी बात कि नई सामाजिक संरचना के निर्माण के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हो।

शिव नारायण सिंह जी ऐसे ही बोध कथाकार के रूप में सामने आते हैं जिनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति और परंपराओं का लोक पक्ष निखरकर सामने आया है। वह एक साधारण, सरल और बहुमुखी प्रतिभा के धनी, कलम-किताब के पुजारी, गणित के विद्वान, समाज के सेवक और बाल भविष्य को लेकर सदैव तत्पर रहने वाले शिक्षक हैं। नए जोशीले युवा शिक्षक के रूप में वह जिन-जिन विद्यालयों में एक अतिथि शिक्षक बनकर गए, बच्चे उनके दीवाने हो गए। इसका सबसे बड़ा कारण उनकी पढ़ाने की अपनी इजाद की गई शैली थी। पढ़ाने की इसी विशेष शैली के कारण आगे चलकर वह बोध कथाओं का सृजन करने लगते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में उनकी बोध कथाओं में आए लोकपक्ष का विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द- लोक-तत्व, संस्कृति, बोधकथा, परंपरा, आधुनिकता

शोध आलेख- समय की इस भागदौड़ में श्री शिव नारायण सिंह जी अपने ही समय में से बहुमूल्य समय निकालकर उसको मानव कल्याण, सामाजिक सद्भावना और लोक कल्याण के लिए समर्पित कर देते हैं। उन्होंने अपने विद्यार्थियों के लिए जिन बोध कथाओं का सृजन किया वह आज सम्पूर्ण मानवता के लिए उपयोगी सिद्ध हो चुकी हैं। सरल, सहज गंवई शब्दों के तिलिस्म में भावनाओं और प्रेरणाओं का सम्प्रेषण करने वाले कथाकार की कथाओं में लोक तत्व का समावेश तो होना ही था।

शिव नारायण सिंह जी ने लोक कथाओं के माध्यम से अपने कथ्य को संप्रेषित भी किया और कुछ ऐसी कथाओं का सृजन किया जो आगे चलकर लोक कथाओं के नाम से जानी जाएंगी। 'विद्यार्थियों से...' संग्रह के सभी दस खण्ड उन सभी प्रेरक प्रसंगों, कथाओं और अपनी विषय-वैविध्यता के साथ विद्यालय के बालक- बालिकाओं, आचार्यगण, शिक्षिकाओं को ही नहीं बल्कि उसे पढ़ने-सुनने वाले और उससे गुजरने वाले हर व्यक्ति को निरंतर प्रभावित करते हैं।

शिव नारायण सिंह जी की किताबों, कहानियों से गुजरते हुए कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि हम उस कहानी के पात्रों - यथा राजा, किसान, मछुआरा, जुलाहा, ग्वाला, गरीब ब्राह्मण, व्यापारी, गड़ेरिया, धोबी, कुम्हार, संत, साधु, सज्जन, बुढ़िया, लकड़हारा, आम आदमी को जानते हैं या इनमें से कोई एक हम स्वयं भी हैं। एक पाठक के रूप में जैसे ही हम यह महसूस करते हैं यह पात्र तो हमारा देखा हुआ है, यह पात्र तो हमारा समझा हुआ है, बस हमने इसको इस दृष्टिकोण से नहीं देखा था, जैसे ही हम यह महसूस करने लगते हैं, कथाकार सफल होने लगता है। शिव नारायण सिंह जी की यह सबसे बड़ी सफलता है कि उनकी कथाओं में आए हुए पात्र लोक से सीधा संवाद स्थापित करते हैं। कहानियों के समायोजन में भी इस बात का ध्यान रखा गया है।

मैं यह पूर्ण दावे के साथ कह सकती हूँ कि जिस प्रकार बुद्ध के संपर्क में आकर डाकू अंगुलिमाल का स्वभाव बदल गया, वह चोरी- डकैती, लूट-पाट और हत्या छोड़कर एक नेक आदमी बन लोगों की मदद करने लगा, संत हो गया। उसी प्रकार शिव नारायण सिंह जी की बोधकथाओं को पढ़कर बहुत से लोग अपने मन की कालिमा को दूर कर निर्मल मन से समाज की सेवा की ओर अग्रसर होंगे। इन दिनों परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि एक व्यक्ति सिर्फ अपना दृष्टिकोण बदल दे तो संत हो जाए, महापुरुष हो जाए। मैं उनके बहुत सारे विद्यार्थियों को स्वयं जानती हूँ जो आज शिक्षण कार्य में लगे हुए हैं। वह उनसे अपने स्कूली समय में सुनी कहानियों को दीक्षा के रूप में सरकारी और प्राइवेट दोनों विद्यालयों में सुना कर एक सिद्ध गुरु की सीख और अच्छे शिष्य की परम्परा का निर्वहन कर रहे हैं ।

अब मैं बात को आगे बढ़ा रही हूँ। उनकी कथाओं में सारे पात्र लोक से उठाए जाते हैं, लोक की आवश्यकता के अनुसार उनमें परिमार्जन किया जाता है और अंतत: तेरा तुझको अर्पण की भावना से विद्यार्थियों के माध्यम से लोक को ही समर्पित कर दिया जाता है। एक तरह से गणित का अध्यापक होने के साथ-साथ वह लोक शिक्षक की भूमिका का निर्वहन भी करते हैं। 'विद्यार्थियों से...' खंण्ड- चार अपने पिता को समर्पित करते हुए उन्होंने लिखा है "अपने कर्मयोगी पिता श्री कन्हैया सिंह जी को जिनके निपुण शिल्पी हाथों ने मुझ अनगढ़ को यह स्वरूप प्रदान किया।"[1]

अब इस समर्पण और उनकी रचनाधार्मिता को एक साथ मिलाकर मैं यह कह सकती हूँ कि जिस प्रकार उनके पिता ने उन जैसे अनगढ़ बच्चे को यह स्वरूप प्रदान किया। उसी प्रकार उन्होंने लोक में फैली हुई अनेक लघु कथाओं को शास्त्र और विज्ञान दोनों का सहारा देकर एक सार्थक रूप प्रदान किया है। उनकी कथाओं पर आज बहुत से शोधार्थी विभिन्न विश्वविद्यालयों में शोध कार्य कर रहे हैं। मैं पुनः कह रही हूँ, बहुत जोर देकर कह रही हूँ कि शिव नारायण सिंह जी द्वारा लोक में फैली लोक कथाओं और पात्रों को समेटना, उसमें लोक और शास्त्र को घुला-मिलाकर नवीनता प्रदान करना, फिर उनका विश्वविद्यालयों में जाना, वहाँ शोध कार्य होना और फिर उन शोधार्थियों का अध्यापक के रूप में अपने गाँव-समाज की तरफ वापस लौटना और फिर लोक से पढ़ने के लिए आए हुए नए विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करना, यह अपने आप में एक सम्पूर्ण वृत्त का निर्माण करता है।

इस प्रक्रिया में मैं देखती हूँ कि इन बोधकथाओं में आए हुए लोक तत्व का संचार देश भर में हो रहा है। यह बोधकथाकार शिव नारायण जी की अद्वितीय सफलता है। यह सफलता उनके नि:स्वार्थ और समर्पित व्यक्तित्व का परिणाम है। कबीरदास जी ने सालों पहले उन जैसे परमार्थी के लिए ही जैसे लिखा है -

वृक्ष कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा शरीर।।

उनके बाद फिर रहीमदास जी ने उसी तरह की मिलती-जुलती बात कही। वह लिखते हैं –

तरुवर फल नहिं खात हैं,
सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित,
संपति संचहिं सुजान।।

श्री शिव नारायण सिंह जी की बोध कथाएँ विद्वता से आक्रांत नहीं हैं। वह सीधा-सीधा कहते हैं समझा-समझाकर कहते हैं, सरल और सहज शब्दों में कहते हैं। लोक में प्रचलित शब्दों का प्रयोग करते हैं। कहावतों, मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग करते हैं। कभी-कभी घरेलू शब्दों का प्रयोग भी करते हैं जिससे कथ्य बच्चों तक सहज ही संप्रेषित हो जाए। अपने द्वारा पालित गाय और उसके बीच संवाद किस तरह होता है उसका जिक्र करते हुए वह कहते हैं –" मैंने भी पाल रखा है, क्या पाल रखा है ? गाय पाल रखी है मैंने और एक नहीं, कई हैं । वे सभी किस भाषा में मुझसे बातें करती हैं ? अगर एक निश्चित समय पर रोज सुबह मैं उनसे ना मिलूँ तो समझो कि तूफ़ान खड़ा कर देंगी।"[2]

अब गाँव में तूफान खड़ा कर देने का अर्थ भला कौन नहीं जानता होगा ? शब्दातीत नाम की यह कहानी शब्द, मौन, भाषा, भाव, मंशा, वार्ता, संवाद की एक ऐसी व्यापकता से पाठक को परिचित करवाती है कि बहुत से आज के युवा हैं जो भाषा कितने प्रकार की होती है, पूछने पर मुँह बा कर खड़े हो जायेंगे। मौन संवाद की महिमा बताते हुए एक जगह वह लिखते हैं- "अगर तुम किसी के लिए कुछ अच्छा करते हो, तो उसका रोआँ-रोआँ तुम्हें आशीर्वाद देता है। तो वह कौन सी भाषा में देता है? वह आवाज तुम्हें सुनाई पड़ती है?"[3]

रोआँ-रोआँ से आशीर्वाद देने की बात पर मुझे अपनी दादी की याद आ गई। इसी संदर्भ में मैं यहाँ अपनी दादी के द्वारा दी गई कुछ सीखों का भी उल्लेख करना चाहूँगी। जब कभी मेरे छोटे भाई-बहन थाली में भोजन छोड़ देते तो वह कहती कि "ए बाबू! अँगना में जन धरीहअ, रसोई में ध द, हम खा लेईब।"[4]

दादी की भाषा में - "अनाज अगर नाली या पंडोहा में जाता है तो अनाज कलपता है।"[5]

वह बोल नहीं सकता लेकिन हमें समझकर अनाज 'जियान' नहीं करना चाहिए। कभी-कभी अचानक बैठे-बैठे देश-दुनिया की बात करते हुए, किसी व्यक्ति या घटना के परिप्रेक्ष्य में वह समझाते हुये कहती थी- "ए बेटा चोरी- झूठ ए सबसे दूर रहे के चाहीं, केहू के मन ना दुखावे के चाहीं, अगर बिना कारण हम दूसरे के दुखी करब तऽ उ रोई तऽ ओकर रो ले आदमी के सराप ना लेवे के चाही। ऐही से नून-रोटी खा के भी ख़ुशी-ख़ुशी रहे के चाहीं। भगवान त सबकर बाने।"[6]

मेरी ही नहीं बहुत लोगों की दादियाँ, पुरानी पीढ़ी की माताएं अपने लंबे जीवनानुभव के बाद ऐसी ही बातें करती हैं। उनकी इन सब बातों का प्रभाव शिव नारायण सिंह जी की रचनाओं में दिखाई पड़ता है। यह लोक है। यह ऐसे ही विस्तार पाता है। उनकी बोध कथाओं में अघाना, उलीचना, जगह छेकना, जवार, आँख तरेरना, खपरैल के घर, सोन-चिरइया, रीछ, गिलहरी, बिल्ली-चूहे, बंदर जैसे गांवों में रोजमर्रा की बातों में प्रयोग होने वाले यह शब्द बहुतायत में देखने को मिल जाते हैं। यह हमें जीवन की जीवंतता का अनुभव करवाते हैं। इन बोध कथाओं का अध्ययन करते समय हम चाहे देश-विदेश में कहीं भी रहें, लोक की खुशबू और गाँव समाज की सोंधी महक आती रहती है।

पहले माताएँ अपने बच्चों को भोजन के अभाव में बहलाने के लिए, उनकी भूख शांत करने के लिए, सुलाने के लिए, दुलराने के लिए, प्यार करने के लिए एक ट्रिक का प्रयोग करती थी। जिसमें चंद्रमा से विशेष कार्य लिया जाता है। वह आता है और बच्चों के मुह में दूध भात डालकर चला जाता है। बच्चा खा लेता है। उसका मन बहल जाता है। वह मुस्कुरा देता है, जैसे वह भी जान रहा हो कि उसे भ्रम में रखा जा रहा है। उसी व्यवस्था के बारे में अपने विद्यार्थियों से बात करते हुए शिव नारायण सिंह जी कहते हैं कि यह व्यवस्था तो आपकी जानकारी में है ही कि कटोरी में

रोटी-दूध तैयार करके, माँ, बुआ और दादी कैसे बच्चों को खिलाया करती थी। कैसे परिवार का दुलार बना रहा करता था। वह कहती थी "चंदा मामा आरे आव अ, पारे आव अ, दूध भात लेहे आव अ ... बाबू के मुँहवा में घूटुक।"[7]

हम देखते हैं कि लोक में प्रचलित इन्हीं सब कथाओं का प्रयोग बोधकथाओं में किया गया है। ये बोध कथाएं कई स्तरों पर संचरण करती हैं।

एक कथाकार के रूप में श्री शिव नारायण जी लोक के कई रंगों को, कई पक्षों, कई संदर्भों को कथा में पिरोकर हमारे सामने रखते हैं। चाहे वह खेत-खलिहान हों, घर में रखा जाँत हो, गाँव के डीह बाबा हों, काली माई हों, महुआ के पेड़, चिरई, रेड़ी का बीज, गुल्ली-डण्डा का खेल हो, गोटी खेलने से लेकर चन्दा मामा को बुलाते हुये एक माँ की मनुहार हो इत्यादि सब कुछ उनकी कथाओं के ताने-बाने के रूप में आपस में गुंफित हैं। बिना शहर से गाँव गये ही आप खेत में चलता हल, खेत में पम्पसेट से चलता पानी, मड़ई, वहाँ का घोठा, भूसे का दालान, जाने कितने चाचा, काका और भाइयों की राम- राम आदि सब कुछ का साक्षात अनुभव इन बोध कथाओं के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं।

श्री शिव नारायण सिंह जी की बोध कथाएं लोक अँचल का वह दिव्य-भव्य प्रांगण हैं, जहाँ आपको कोयल, कठफोड़वा, हंस, बगुला, मोर, सारस, बुलबुल, मैना, गौरैया के आने से लेकर बरखा में नाव बहाते बच्चे तक, हर पर्व, त्यौहार, आकाश गंगा से पतित पावनी गंगा, राप्ती, सतलज, नर्मदा, कोसी, घाघरा, सरयू, सोन नदी, ब्रह्मपुत्र, गोदावरी इत्यादि नदियाँ, अशोक, बरगद, पीपल, नीम, चीड़, देवदार, आम, चिनार, सागौन, बबूल के वृक्ष, कठौती, चूल्हा, राखी, माटी, लोटा, बटुली, इनार, कल, मटकी, कुम्हार, फूल की थाली से लेकर नून, कितने प्रकार के अनाज हैं बाजरा, ज्वार, मक्का, चना, टँगूरी, कोदो, रागी, राजगीरा जिन्हें आज हम लोग मिलेट्स कहते हैं, सबके सब इन बोध कथाओं में लोक तत्व के रूप में शामिल हैं। 'विद्यार्थियों से.. खण्ड-सात' की कहानी 'माँ' को शुरू से अन्त तक पढ़ते हुये आप माँ के हर रूप, तमाम शक्तिपीठों, थावें वाली दुर्गा माई, तरकुलही देवी, तारा देवी, नैना देवी, देवरही माई स्वरूप, पीठ स्थान प्रसिद्ध मंदिर और देवी रूप साथ ही उनकी आस्था उनके चमत्कारों से अपने आपको परिपूर्ण महसूस करते हैं। एक पूरी कथा जो माँ और उसकी महत्ता को दर्शाती है, बताती है।

अब कुछ कहानियों और कथाओं के उदाहरण के माध्यम से बात को और ठीक ढंग से समझ लेना चाहिए। उनकी एक कथा 'नदी-तालाब' शीर्षक से है। इस कथा में नदी और तालाब के संवाद को बहुत ही रोचक ढंग से और बहुत ही उद्देश्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। नदी में गतिशीलता है, निरन्तरता है, दाता का भाव है, समर्पण है। तालाब में स्थिरता है, ठहराव है, वह ले लेने के भाव से भरा हुआ है, देना नहीं जानता। इस कथा में श्री शिव नारायण जी ने बहुत ही रोचक तरीके से छत्तीसगढ़ के नदियों और तालाबों की स्थिति का वर्णन करते हुए अपने स्वप्न में ही नदी और तालाब का संवाद दिखाया है।

लोक कथाओं की खूबसूरती ही यही है कि उसमें मूक प्राणियों या निर्जीवों को बोलते हुए दिखाया जाता है, उनका मानवीकरण किया जाता है। जब तालाब ने नदी से कहा कि "अब भी समय है चेतो, अपने को संभालो, अपनी जल संपदा को रोको और उसे मेरी ही तरह संग्रहित कर लो, जाने इसकी कब तुम्हें आवश्यकता पड़ जाए।"[8]

नदी यह सुनते ही बोल पड़ी। उसका स्वभाव तालाब की तरह ठहर जाने का नहीं था। उसने तो दूसरों के लिए, समुद्र के लिए, खुद को दे देना सीखा था, उसी में उसका सुख था। वह कह उठती है- "जीवन में खोने का बड़ा महत्त्व है। खोने में जो आनंद है उसकी कोई सीमा नहीं है। जिसने खोया है उसने ही जाना है। जब भी जिस भी कारण मैंने अपना खोना रोका है, मुझे दुखी होना पड़ा है। जैसे ही परिस्थितियाँ बदली हैं मैंने फिर देना प्रारंभ किया है। देखो मेरे अंदर

प्रफुल्लता उमड़ आई, आनंद उमड़ आया है।"[9]

इस कहानी का निष्कर्ष बहुत ही प्यारा है। इससे मिलने वाली वाली शिक्षा आध्यात्मिक है। यह परम सत्ता से किसी न किसी रूप में जाकर मिलती। यह बताती है कि कर्मों का फल अवश्य मिलता है। कथाकार शिव नारायण सिंह जी अपने विद्यार्थियों से कहते हैं- "जो आपके पास है उसे बांटो, उलीचो जैसे ही बांटोगे वैसे ही पुन: तुम्हें मिल जाएगा। उन अज्ञात स्त्रोतों से जिसके बारे में तुम्हें पता भी नहीं है। तभी तो कबीर ने कहा है-

"जो जल बाधे नाव में, घर में बाढे दाम।
दोनों हाथ उलीचिए, यही सयानो काम।।"[10]

बोध कथाकार शिव नारायण जी की त्यौहारों में बहुत रुचि है। लोक संस्कृतियों में उनकी गहन आस्था है। ऐसा इसलिए कि यह सब परम्पराएं प्रकृति के सबसे अधिक निकट दिखाई देती हैं। प्रकृति के अनुसार जीवन जीकर ही अंतत: शांति पाई जा सकती है, आनंद पाया जा सकता है। मकर संक्रांति की कथा वह विद्यार्थियों के साथ बड़े दुलार से शुरू करते हैं। 'क्रांति बीज' की शुरुआत में ही वह मकर संक्रांति पर खाए जाने वाले तिल का लड्डू, खिचड़ी आदि का जिक्र करते हैं। वे कहते हैं कि "प्रिय विद्यार्थियों, आज की कथा वार्ता मकर संक्रांति की है। अभी आपने मकर संक्रांति मनाई। नहीं मनाई ? मनाई ? चलिए, अगर आपने मकर संक्रांति मनाई है, तो खूब तिल का लड्डू खाए होंगे, लाई खाए होंगे, खिचड़ी खाए होंगे। अब आपका उस दिन व्रत रहा हो, तो उसमें मेरा क्या दोष ? लेकिन यह हमारी मान्यता है, यह हमारी व्यवस्था है, हम इस दिन ऐसा करते हैं।" [11]

मकर संक्रांति लोक संस्कृति को प्रदर्शित करने वाला अद्भुत त्यौहार है। इसी बहाने कथाकार शिव नारायण जी ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चंद्रमा, कर्क, मकर इत्यादि की जानकारी अपने विद्यार्थियों को देते हैं। वे साइंस को कभी नहीं छोड़ते। इस सृष्टि का निर्माण कैसे हुआ ? पहली बार किस चीज का निर्माण हुआ था ? किसने बनाया इस संसार को ? यह सारे प्रश्न ऐसे प्रश्न हैं जिनके उत्तरों के इर्द-गिर्द लोक विश्वास घूमता रहता है। न जाने कितने प्रकार की कथाएं बनी। न जाने कितनी मीमांसाएं हुई। न जाने कितने देवी देवताओं की सृष्टि हुई। लेकिन निर्माणकर्ता के रूप में ब्रह्मा का ही नाम सर्वाधिक आता है। तो उन्हीं ब्रह्मा जी का नाम लेकर, क्योंकि लोक में ब्रह्मा जी ही सर्वाधिक प्रचलित हैं।

ब्रह्मा की कथा के सहारे 'स्वप्न और यथार्थ' नामक बोधकथा का सृजन आदरणीय शिव नारायण जी करते हैं। वह कथा की शुरुआत इस प्रकार करते हैं कि "प्रिय विद्यार्थियों, आज बात होनी है सृष्टि के निर्माण के समय की। बात बहुत पुरानी है, जब इस सृष्टि का निर्माण हो रहा था। इस सृष्टि के निर्माता कौन हैं ? ब्रह्माजी, तो ब्रह्मा जी इस सृष्टि के निर्माता है। जिन दिनों ब्रह्मा जी इस सृष्टि का निर्माण कर रहे थे। जितनी भी विचित्र और अद्भुत चीजों का निर्माण वे कर पा रहे थे, कर रहे थे। उन्होंने क्या-क्या नहीं बना दिया, लेकिन फिर भी उनकी उत्सुकता कम नहीं हो पा रही थी।"[12]

एक लोक चिन्तक के रूप में लेखक आदरणीय श्री शिव नारायण सिंह जी अपनी बोध कथाओं के हर पैराग्राफ़ में हमें इंगित करते हैं कि - आपको करना क्या है? आप चाहते क्या हैं? आपकी रणनीति कैसी होनी चाहिये ? जीवन संग्राम में आपकी सेना, सिपाही और जीत के सम्पूर्ण मंत्रों को संघर्षों की कसौटी पर कसकर तैयार रहना चाहिए। अच्छे-बुरे अनुभवों में तपने के बाद वह हम सबको उन अनुभवों का घूँट पीने का एक नैतिक साहस देते हैं । उनकी हर कथाओं में जो सवाल, जो चिंतन- मनन, जो विचारों का आदान- प्रदान है वह हमारे लिए, हमारे कल के उस अनिश्चित भविष्य की नींव है, जिसके निर्माण की प्रक्रिया न जाने कब से चल रही है।

जिस दिन हम सफलता की राह चल, मंजिल को पहुँच जाते हैं। उस दिन हमें, हमारे जीवन उपदेश और उद्देश्य में एक ही व्यक्तित्व दिखाई पड़ता है- अपने श्रेष्ठ गुरुवर! हमारे निर्माणकर्ता का-

जलाओ दिये पर रहे ध्यान इतना।
अंधेरा धरा पर कहीं रह न जाये।।

इस सोच को विश्वव्यापी बनाने में कथाकार श्री शिव नारायण जी का दृष्टिकोण एकदम सटीक है । 'विद्यार्थियों से...' के पूरे दस खण्ड और उनकी अन्य किताबों 'मूल्यों के निर्माण कलश', 'मेरे प्रिय जागो पहले ही बहुत देर हो चुकी है', 'तू फिर मेरी माँ बन', 'विद्यार्थियों से...संचयन', 'समय सिंधु के पार' आपको यथार्थ के धरातल पर उतारने में पूर्ण सक्षम हैं ।

निष्कर्ष- इस प्रकार हम देखते हैं कि बोध कथाकार श्री शिव नारायण सिंह जी अपनी बोध कथाओं में एक लोक चिंतक के रूप में सामने आते हैं। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य पर, विश्व शांति पर, दर्शन पर, समाज पर गहन चिंतन करने वाले रचनाकार के भीतर लोक तत्व की कितनी गहरी समझ है, चिंता है, जुड़ाव है, यह भी इन बोध कथाओं के माध्यम से जाना जा सकता है।

इस वर्तमान पूँजीवादी, भौतिकतावादी, बाजारवादी दुनिया में यदि थोड़ी देर के लिए भी कोई अपने लोक से जुड़ सके, आत्मीयता का अनुभव कर सके, पुरानी पीढ़ी का स्मरण कर सके, उनसे कुछ सीख ले सके या उनकी कथाओं के माध्यम से कुछ नया कर सके तो, उसके भीतर बोध जागृत हो सके तो इसी में कथाकार की सफलता है। यही उनका अभीष्ट है। अंत में मैं संक्षेप में उनकी एक कहानी 'दुर्गुणी पौधा' का उल्लेख कर देना चाहती हूँ। इस कहानी में मनुष्य के मन का अहंकार 'दुर्गुणी पौधा' के रूप में चित्रित किया गया है।

जब वह जन्म लेता है तो सारी बगिया के सारे खूबसूरत और सुगंधित फूलों को ढक लेता है। उसकी दुर्गंध ही सर्वत्र व्याप्त हो जाती है। इस कहानी का सूक्ति वाक्य यह है कि "जिसने अभिमान और अहंकार पर विजय प्राप्त कर लिया फिर तो उसे कोई रोक नहीं सकता, वह परम पद प्राप्त कर सकता है। वह सब कुछ प्राप्त कर सकता है, जो वह चाहता है प्राप्त करना।"[13]

मैं अपने कथाकार श्री शिव नारायण सिंह जी में भी वहीं निरभिमानी-निश्चल मन देखती हूँ। उन्होंने दुर्गुण का पौधा कब का उखाड़ फेंका है। ऐसे पुरुषार्थी के प्रभाव से शिवलोक में भी दुर्गुण का पौधा नहीं रह सकता।

संदर्भ सूची-

1. समर्पण, 'विद्यार्थियों से...', खंड-4
2. शिव नारायण सिंह, विद्यार्थियों से... खंड-7, पेज-376
3. शिव नारायण सिंह, विद्यार्थियों से... खंड-7, पेज-375
4. दादी का कथन, जो स्मृतियों में है
5. दादी का कथन, जो स्मृतियों में है
6. दादी का कथन, जो स्मृतियों में है
7. शिव नारायण सिंह, विद्यार्थियों से... खंड-3, पृष्ठ संख्या-104
8. शिव नारायण सिंह, नदी-तालाब, 'विद्यार्थियों से... संचयन'-523
9. शिव नारायण सिंह, नदी-तालाब, 'विद्यार्थियों से... संचयन'-523
10. शिव नारायण सिंह, नदी-तालाब, 'विद्यार्थियों से... संचयन'-524
11. शिव नारायण सिंह, क्रांति बीज, 'विद्यार्थियों से ... संचयन'-315
12. शिव नारायण सिंह, स्वप्न और यथार्थ, 'विद्यार्थियों से... संचयन'-268
13. शिव नारायण सिंह, दुर्गुणी पौधा, 'विद्यार्थियों से... संचयन'-129

शिव नारायण सिंह की बोध कथाओं में यथार्थ

शिवेश सिंह
शोधार्थी
बोधकथा शोध संस्थान
शिवलोक, गोरखपुर उ.प्र.

प्रस्तावना- बीसवीं सदी के तीसरे दशक में हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद एक महत्त्वपूर्ण धारा के रूप मे उभर कर सामने आया। इसके पीछे कुछ सामाजिक परिवर्तनों की भूमिका रही। जीवन में जो परिवर्तन हुए उसके मुख्य कारण थे स्वाधीनता संग्राम आन्दोलन जिसने विश्व स्तर पर साहित्य की दिशा को परिवर्तित कर दिया। आदर्शोन्मुख साहित्य की जगह यथार्थवाद ने ले लिया। साहित्य के केन्द्र में अभिजात्य वर्ग की जगह मजदूर, दलित और पीड़ित वर्ग ने ले लिया। गरीबी, भूखमरी और सामाजिक उत्पीड़न के अतिरिक्त समाज का वह सच उभरकर सामने आया जिससे रचनाकार सदियों से आँख बन्द किये हुए थे। जीवन के सुन्दरम पक्ष के पीछे की खुरदरी भूमि पर भी प्रकाश पड़ा, जो दृश्य उभरकर सामने आया उसे यथार्थवाद के रूप में परिभाषित किया गया।

इस कठोर और दुखद पक्ष को भी जैसे का तैसा साहित्य में स्थान मिला। इस यथार्थवादी प्रवृति का उद्देश्य समाज के छिपे यथार्थ को मात्र उजागर करना ही नहीं था, बल्कि एक नये समाज की रचना करना भी था। जिसने समाज के भीतर जगह बनाये। अन्यायपूर्ण स्थिति पर चोट करना और एक समता मूलक न्यायपूर्ण समाज की रचना करना भी था। हिन्दी साहित्य में मुंशी प्रेमचन्द, यशपाल और जैनेन्द्र जैसे अनेक कथाकारों ने हिन्दी कथा जगत में एक नवीन परिदृश्य उपस्थित किया। जिसे यथार्थवाद के रूप में रेखांकित किया जाता है।

शिव नारायण सिंह का कथा साहित्य, कहानी लेखन की स्थापित परम्परा से पूर्णतया भिन्न है। वे कहानी लिखते नहीं बोलते हैं। कुल मिलाकर उसे किस्सागोई कहा जा सकता है। ऐसे किस्सागोई जिसका दायरा उनके विद्यार्थी तय करते हैं। विद्यालय की प्रार्थना सभा में अपने विद्यार्थियो को सम्बोधित करते हुए जिन कथाओं को वे सुनाते हैं उसे ही विभिन्न खण्डों में 'विद्यार्थियों से...' के रूप में प्रकाशित किया गया है। शिव नारायण सिंह का गाँव देवरिया जनपद का छपिया जयदेव है जो भटनी ब्लाक में छोटी गण्डक नदी के तट पर स्थित है। उनके पूरे कथा साहित्य में गण्डक की धारा की तरह ग्रामीण जीवन बहता हुआ देखा जा सकता है।

बीज शब्द– यथार्थवाद, जीवनपथ, भरण-पोषण, आर्टिफिशिफल- इन्टेलीजेंस, श्रेयस्कर, बाजारवाद, धारा, अभिव्यक्त, सामंजस्य

शोध आलेख- कहानी 'कार्यकुशलता' जिसमें एक गरीब मोची का लड़का पहले तो अपने पिता के साथ काम सीखता है लेकिन जब कुछ बड़ा हो गया तो उसे लगा कि पिता के साथ काम करके साथ रह कर हम लोगों का काम उतना नहीं बढ़ पा रहा कि हमारा भरण-पोषण हो सके।

"उसने सड़क के किनारे एक अलग जगह खोजी और आवश्यक औजार लेकर बैठ गया। वह ठहरा मोची का लड़का, काम जानता ही था। जूते टाकने का काम, पालिश का काम शुरु कर देता है।"[1]

इस कहानी में एक यथार्थ उभरकर सामने आता है कि एक मोची का लड़का एक अच्छा मोची बनता है। प्रायः मोची की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं होती कि वह अपने बेटे को किसी अच्छे विद्यालय में औपचारिक शिक्षा के लिए भेज सके। यह कहानी इस बात का सन्देश देती है कि मोची का लड़का अच्छा

काम करके जूता बनाने का उद्योग भी खोल सकता है। यह कहानी जहाँ एक तरफ जीवन के यथार्थ को चित्रित करती है तो सफलता के लिए एक आदर्श भी प्रस्तुत करती है।

इस खण्ड में एक कथा 'परिश्रम' कहती है। एक गृहस्थ लोहार था दिन भर काम में लगा रहता था। छोटे-मोटे उपकरण बनाया करता। पहले लोहे को भट्ठी में तपाता, गर्म करता, पीटता तब जाकर कुछ तैयार होता और बड़ी मेहनत मशक्कत कर परिवार का गुजारा चल पाता। उसका एक लड़का भी था, जो अब बड़ा हो गया था। वह उसे समझाता बेटा मेरे कार्य में सहयोग करो, मेरे साथ काम सीख लो। हुनर सीख लोगे तो काम के आदमी हो जाओगे। नहीं तो बेकार फिरते रहोगे, जीवन में बड़ी कठिनाई होगी।

लेकिन लड़का उसकी बातों को अनसुना कर देता, उन पर गौर नहीं करता, उनके अनुसार आचरण नहीं करता। एक दिन पिता ने थक-हारकर उससे कहा- "अगर तुम कमाओगे नहीं तो आज से तुम्हारा खाना-पीना बन्द। पिता ने उसे डाँटा-फटकारा और कहा- मैं तुम्हें घर से निकाल दूंगा, यदि तुम प्रतिदिन कम-से-कम दो रुपये कमाकर नहीं लाओगे।"[2]

यहाँ स्पष्ट है शिव नारायण सिंह की बोधकथाओं का वितान गाँव के कठोर जीवन के यथार्थ पर खड़ा है। जहाँ अभाव है और अभाव जनित विसंगतिया हैं। जिनके भीतर से होकर वे एक नये समाज की रचना का रास्ता ढूंढ़ लेते हैं। इसका मुख्य कारण है प्रार्थना सभा में खड़े उनके विद्यार्थियों का समूह। जिन्हें एक बेहतर जीवन के लिए तैयार होना है। शिव नारायण सिंह एक विद्यालय के प्रधानाचार्य है। अपने किस्सागोई के माध्यम से उन्हें अपने विद्यार्थियों व समाज को ऐसे दृष्टि सम्पन्न रूप में विकसित करना होता है ताकि इन्हीं विद्यार्थियों के माध्यम से भ्रष्टाचार विहीन सदाचारी समाज का सृजन हो सके।

'संगति' कुम्हार की कहानी है। वह एक योग्य गधा खरीदना चाहता है जो उसके काम-काज में सहायता कर सके। गधे के मालिक से जब वह मेहनती गधा खरीदने जाता है तो वह देखता है कि जिस गधे को वह खरीदना चाहता है, उसकी संगति आलसी गधे के साथ है जो हमेशा सुस्त एवं ढीला पड़ा रहता है। बाद में वह मालिक को मना कर देता है, उसका कहना रहता है कि आलसी और कामचोर गधे के साथ रहकर खरीदे जाने वाले गधे की भी यही स्थिति होगी।

इस बोध-कथा के निष्कर्ष में शिव नारायण सिंह कहते हैं कि- "आप क्या खोजते हैं ? आप क्या पाना चाहते हैं ? यह आपका अपना निर्णय है। उस कुम्हार को जिस गधे, घोड़े, खच्चर या ऊँट की जरूरत रही होगी उसे उसने जरूर खोज लिया होगा। उसकी प्रोसेसिंग आपने देखी। उसकी प्रोसेसिंग इतनी पॉजिटिव है कि उसे उसका लक्ष्य मिलना-ही-मिलना है। आपने देखा तत्क्षण उस गधे के स्वभाव का उसे अंदाजा हो ही गया।" [3]

यहाँ संत कबीर का एक दोहा याद आता है। वह लिखते हैं-

जिन खोजा तिन पाईयाँ गहरे पानी पैठ।
मैं बपुरा बूड़न डरा रहा किनारे बैठ।।

निश्चय ही सफलता उसे ही मिलेगी जो खोजी होगा। जो सतत अध्यावसायी होकर अनुसंधान में लगा रहेगा। जिसे डूबने या बिखरने का भय होगा वह कभी भी सत्य का अन्वेषण नहीं कर सकेगा।

शिव नारायण सिंह अपने कैशोर्य अवस्था का स्मरण करते हुए एक संस्मरण सुनाते हैं। जब वह छत्तीसगढ़ में रहते थे उनके मुहल्ले तेलीपारा में एक लड़का था समीर घोष जिसके दोनों हाथ नहीं थे। इसके बावजूद भी वह एक मात्र अकेला लड़का था जो प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुआ। उस लड़के को स्मरण कर वह कहते हैं- "देखिए, एक बहुत ही समसामयिक घटना है। मैं जहाँ पढ़ता था, बिलासपुर, पहले मध्यप्रदेश में हुआ करता था, अब छत्तीसगढ़ प्रान्त में है। उसी शहर में जहाँ मैं रहा करता था उसी से सटे एक मोहल्ला था, तेलीपारा। उस मोहल्ले में एक लड़का रहता था, समीर घोष। मैं साइंस कॉलेज का स्टूडेण्ट था और वह आर्ट्स कॉलेज का स्टूडेण्ट था। उस लड़के के दोनों हाथ नहीं थे, पैर से लिखता था वह। मुझे ठीक-ठीक याद है कि बी.ए. में वह अकेला

लड़का फर्स्ट आया था अपने कॉलेज से। बी.ए. त्रिवर्षीय कोर्स हुआ करता था उन दिनों, वह अकेला लड़का था जिसने बी.ए. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया था। मैं उससे मिला हूँ, मैं उसे जानता हूँ और यह एकदम सत्य है कि वह पैर से लिखता था, बहुत सुन्दर लिखता था। उसका उन दिनों बी.ए. में प्रथम श्रेणी प्राप्त करना बहुत ही बड़ी बात थी।"

निश्चय ही यदि मनुष्य अपने उद्यम और परिश्रम का सही उपयोग करे तो जीवन में क्या नहीं अर्जित कर सकता है, यह कर्मठता ही है जो जीवन-पथ में शिखर तक ले जाती है। शिव नारायण सिंह का बचपन उत्तर प्रदेश के देवरिया जनपद के ग्रामीण इलाके से लेकर छत्तीसगढ़ के आदिवासी इलाकों से होता हुआ बिलासपुर तक फैला हुआ है। उनके बोध कथाओं में गाँव का किसान, लोहार, बढ़ई जैसे पात्र है और उनके जीवन का कठोर यथार्थ है।

प्रगतिवादी कथाकारों ने जीवन के जिस यथार्थ को चित्रित करते हुए आक्रोश और प्रतिरोध के साहित्य का सृजन किया है वहीं शिव नारायण सिंह के कथा जगत में जीवन का कठोर यथार्थ अभिव्यक्त होता है परन्तु प्रतिरोध की जगह एक बेहतर समाज सृजन का सपना लेकर आता है। बोध कथाओं का उद्देश्य कथा के माध्यम से किसी विषय को बोधगम्य बना देना रहा है।

आज वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के कारण जीवन का यथार्थ काफी जटिल हुआ है। इसी जटिलता को सरल तरीके से बोधगम्य बना देना शिव नारायण सिंह की कथा या किस्सागोई का उद्देश्य रहा है। यदि हम बोध कथाओं के इतिहास में जाने का प्रयास करें तो एक दौर विष्णु शर्मा के पंचतंत्र का देखा जा सकता हैं। जहाँ बोधकथा आदमी के जीवन के सच (यथार्थ) को विश्लेषित तो करती है परन्तु उस दौर की बोध कथाओं के पात्र प्रायः कुत्ते, बिल्ली, शेर और सियार हुआ करते थे। जीवन इतना जटिल भी नहीं होता। मनुष्य पशु जगत के बहुत करीब होता था जब खेती बैलों से होती थी।

आज मशीनीकरण के दौर में उत्पादन के पारम्परिक साधनों की जगह उन्नत किस्म की मशीनों ने ले लिया है। उत्पादन के बदले हुए दौर में सामाजिक सम्बन्धों का बदल जाना भी स्वाभाविक है। शिव नारायण सिंह की कथा साहित्य समाज के इसी बदलते दृश्य का चित्रांकन करने में सफल हुआ है। 'विद्यार्थियों से...' के सभी खण्डों में प्रायः अधिकतम कहानियों में गांव के बढ़ई, लोहर, हजाम, धोवी इत्यादि लोग मुख्य पात्र के रूप में आये हैं। परन्तु उनके जीवन का यथार्थ इक्कीसवीं सदी के भारत के जीवन का यथार्थ है। जिसका स्वरूप बहुत तेजी से बदल रहा है। शिव नारायण सिंह की किस्सागोई का जमीनी यथार्थ यह है कि विद्यालय की प्रार्थना सभा में बैठे विद्यार्थी आर्टिफिशिफल इन्टेलीजेंस के दौर के विद्यार्थी होते हैं। जिनकी जिज्ञासा को राजा-रानी, परी-जगत तथा पशुओं की कथा से तृप्त नहीं किया जा सकता।

किस्सागो शिव नारायण सिंह की किस्सागोई तमाम सारे जीवन्त सवालों का जवाब ढूढ़ने में सफल हुई है। जिसके पृष्ठभूमि में भारत का ग्रामीण जीवन और उसका यथार्थ है परन्तु उत्तर आधुनिक काल और गाँव के धूल मिट्टी के बीच एक सेतु बनाने का काम शिव नारायण सिंह की किस्सागोई ने किया है।

शिव नारायण सिंह की बोध कथाएँ यथार्थ को प्रस्तुत करने में अति विशिष्ट हैं। 'आत्मावलोकन' की कथा देखने योग्य है। इस बोध कथा में समाज के यथार्थ को शिव नारायण सिंह जी ने प्रस्तुत किया है। एक सर्वश्रेष्ठ कलाकार ने अपनी पूरी योग्यता से कलाकृति बनाई। उसे लगा यह मेरी सर्वश्रेष्ठ कलाकृति है। इसीलिए उसे सुबह नगर के मुख्य चैराहे पर लगे खम्भे पर टांग देता है और उसके नीचे लिख देता है कि इसमें किसी को जहाँ कहीं कोई कमी दिखाई देती हो, चिह्नित करने का कष्ट करें।

शाम को जब वह अपनी कलाकृति उतारने जाता है तो देखता है कि उस कलाकृति में थोड़ी भी जगह शेष नहीं है। दूसरे दिन वह अपनी एक और कलाकृति जिसे वह उतना श्रेष्ठ नहीं मानता है उसे भी वहीं टाँग आता है और इस बार लिखता है- इसमें जहाँ कमी दिखे कृपया उसका सुधार करें। शाम को जब उसे उतारने पहुँचता है तो किसी ने उस पर कुछ भी

नहीं चलाया। कैसी विचित्र बात है ? जब करने की बात आयी तो किसी को कोई कमी नहीं दिखी। वहीं जब केवल कमी चिह्नित करनी थी तो बहुत अधिक दिखाई दे दी।

वे बच्चों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि "प्रिय विद्यार्थियों, ऐसा ही होता है, जब कुछ करने की बात आती है तो आप बगले झाँकने लगते है और जब कमेंट पास करने की बात आती है तो सबसे आगे, यह बताने के लिए कि आपने ऐसा नहीं किया, वैसा नहीं किया, कोई मौका चूकते नहीं हैं। आप अपने बारे में सोचिए, अपने अन्दर की कमियों को निकालने की कोशिश कीजिए। अगर आप ऐसा कर पाते हैं तो निश्चित रूप से आपसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण व्यक्ति कोई है ही नहीं। आप आत्मावलोकन करें और जो भी कमी आपको समझ में आये उसे दूर करें। यदि आप ऐसा करते हैं तो निश्चित हीं आपको वह लक्ष्य मिलेगा जिसके लिए आपका यहाँ आना हुआ है।"[4]

इसी प्रकार की वास्तविक व यथार्थ पूर्ण स्थितियों से अपने बच्चों को आगाह करते रहते हैं। आज मनुष्य के जीवन पर बाजारवाद बहुत बुरी तरह से हावी हुआ है। सच कहे तो बाजारवाद हमारे जीवन का यथार्थ बन गया है। 'विद्यार्थियों से...' के खण्ड चार की एक कहानी है 'बाजारवाद' जिसमें एक भव्य मन्दिर है, बहुत मान्यता है उस मन्दिर की। जो भी वहाँ जाता है, जिस इच्छा से जाता है। मनोयोग से, निष्ठा से जो कुछ भी माँग लेता है, उसे मिल ही जाता है।

"एक सेठ है, वहाँ प्रतिदिन जाया करता है। पूजा-अर्चना करता है और मन्दिर से चलते समय पुजारी को जिस दिन दक्षिणा में कुछ देता है उस दिन उसे बड़ा मुनाफा होता है।"[5]

आज उत्तर आधुनिक दौर में समाज का इस प्रकार बाजारीकरण हुआ है कि पूजा-पाठ और दान-पुण्य को भी मुनाफे की कसौटी पर देखा जाने लगा है।

शिव नारायण सिंह की यह कहानी 'बाजारवाद' बाजारीकृत समाज के यथार्थ की ओर बड़े सरलता से संकेत करती है। कुछ ऐसे कि आज कल शल्य क्रिया हेतु ऐसे उपकरण विकसित कर लिए गये हैं, जो रोगी का आपरेशन बिना किसी पीड़ा के कर देते हैं। ऐसे ही शल्य क्रिया लेजर उपकरण की तरह शिव नारायण सिंह की कथा साहित्य जीवन के कड़वे सच का ऑपरेशन कर देती है। जिसका आभास पाठक को काफी देर से हो पाता है।

शिव नारायण सिंह ने बोध कथाओं का उपयोग मात्र अपने विद्यार्थियों को सम्बोधित कर व्यक्ति निर्माण कार्य ही नहीं किया है बल्कि समाज के कठोर यथार्थ पर छीनी-हथौड़ी चलाकर मानवीय समाज के सृजन का प्रयास भी किया है। उनकी बोध कथाओं ने विषय वस्तु को मात्र विश्लेषित करने का कार्य ही नहीं किया है बल्कि जीवन और समाज के यथार्थ को वैसे ही प्रस्तुत किया है। जैसे दादा-दादी, नाना-नानी सोते समय अपने बच्चों को सुनाया करते। फर्क दादा-दादी की किस्सागोई इतनी सुखकर होती है कि श्रोता बालक को नींद आने लगती है। परन्तु शिव नारायण सिंह की किस्सागोई सुलाने का नहीं बल्कि जगाने का काम करती है।

कथाकार शिव नारायण सिंह ने भारतीय जीवन को बहुत करीब से देखा है। घटनाओं, परिघटनाओं को देखने की उनकी एक विशेष प्रकार की दृष्टि है। जीवन का व्यक्तिगत यथार्थ हो या सामाजिक शिव नारायण सिंह की दृष्टि बहुत कुछ अर्थों में आम आदमी के समझ से भिन्न नजर आती है। किसी परिघटना को व्याख्यायित करने के लिए कथा के पात्र भले ही काल्पनिक हो पर कथा में उनके कार्यकलाप भी सामान्य दिखने वाले नहीं हो सकते है। ऐसे उन कथा संवादों में जादुई यथार्थ परिलक्षित होता है। जो हमारे कथा लोक में प्राचीन काल से उपस्थित है।

शिव नारायण सिंह की कथा से संसार में कहीं-न-कहीं जादुई यथार्थवाद का भी अवलोकन किया जा सकता है। उदाहरण के लिए कथा 'जादुई सरोवर' को देख सकते हैं। हिमालय की पहाड़ियों में एक सरोवर है, उस सरोवर के तट पर एक वृक्ष है। यह वृक्ष अलौकिक है। कहा जाता है कि यदि कोई उस वृक्ष से सरोवर में कूद जाये तो उसका रूपान्तरण हो जाता है। एक दिन बन्दर और बन्दरिया देखते है कि

एक मनुष्य ऐसा करके देवता बन गया तो उन दोनों ने एक साथ छलांग लगा ली। फिर बन्दर सुन्दर पुरुष बन गया और बन्दरिया सुन्दर स्त्री बन गई। पुरुष बने बन्दर ने कहा चलो अब हम दोनों देवता बन जाते है। बन्दरिया ने कहा- यह क्या कम है कि हम बन्दर से मनुष्य हो गये हैं। किन्तु, पुरुष बना बन्दर मानता नहीं है। वह अकेले ही पुनः सरोवर में छलांग लगा लेता है। फिर क्या ? वह पूर्व अवस्था में आ जाता है। वह बहुत ही पछताता है।

शिव नारायण सिंह बच्चों को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि "अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गयी खेत।"

चिड़िया चुग गयी खेत अर्थात् समय निकल गया, परिस्थितियाँ बदल गयी। फिर कुछ नहीं होने वाला चाहें लाख सिर पीट लो, लाख सिर धुन लो। फिर कुछ होने वाला नहीं। यही मैं बार-बार आपसे कहता आ रहा हूँ। आज फिर कह रहा हूँ कि समय को समझो, जानो, पहचानो, क्योंकि अवसर ऐसे ही आता है, और हम अपनी मूर्खता वश उसे वैसे ही चले जाने देते हैं। यह सूत्र वाक्य है एकदम गठिया लो दिमाग में रख लो। समय को न पहचानना मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी है।"[6]

क्या यह जीवन का यथार्थ नहीं है, है ना ? एकदम है।

गुरुपूर्णिमा के पावन अवसर पर गुरु शिष्य के सम्बन्ध पर बात करते हुए शिव नारायण जी 'परोपकार' नामक एक कथा विधार्थियों से साझा करते हैं। यह छोटी-सी कथा अत्यंत मार्मिक है। इस कथा में वह एक प्यासे व्यक्ति के विषय में बताते हैं कि प्यास से व्याकुल वह व्यक्ति अपने निकट समुद्र के जल को पीने के लिए उठाता है किन्तु खारा होने के कारण वह पी नहीं पाता। वह सोचता है कि नदियों का जल मीठा होता है और समुद्र का खारा क्यों ? जबकि सभी नदियाँ मीठा जल लेकर समुद्र में मिलती हैं।

उसी समय अचानक एक व्यक्ति कहता है कि- "नदियाँ हर क्षण अपना जल दूसरों में बाँटती रहती हैं और इसी कारण उनका जल मीठा होता है, जबकि समुद्र, सभी नदियों का जल लेकर इकट्ठा कर लेता है, उसे अपने में ही भर लेता है वह इसे बाँटना नहीं जानता है, वह परोपकार का कोई कार्य नहीं करता है इसी कारण इसका जल खारा है। नदियाँ उपकार में लगी हैं, वे अपना जल अनवरत बाँटती रहती हैं, दूसरों के उपयोग के लिए लगी रहती हैं, वे दूसरों को लाभ पहुँचाती हैं इसीलिए उनका जल मीठा है।"[7]

इस बोधकथा के द्वारा विद्यार्थियों को समझाते हुए शिव नारायण सिंह जी नदियों की तुलना गुरु से करते हैं। वह कहते हैं कि नदियों की तरह गुरु भी अपने अन्दर व्याप्त ज्ञान को अपने शिष्यों को प्रदान करते हैं। वह कभी भी अपने पास मौजूद ज्ञान को संकुचित कर नहीं रखते। बाँटना, प्रसारित करना एवं आने वाली पीढ़ियों को तैयार करना एक शिक्षक का दायित्व है। अतः विद्यार्थियों को चाहिए कि वे भी गुरु से सीखें और अपने पास विद्यमान ज्ञान-संपदा को सभी में बांटे इस तरह वह भी एक योग्य मार्गदर्शक बन सकेंगे। देखने में यह कथा अत्यंत सामान्य-सी लगती है किन्तु इसके भीतर निहित सीख अत्यंत गहरी और अनुकरणीय है।

'सामंजस्य' नामक कथा में शिव नारायण सिंह ने बहेलिये का हौसला तथा दूसरी तरफ पक्षियों के विचारों के बीच सामंजस्य दोनों ही महत्त्वपूर्ण विषय पर चर्चा की है वे कहते हैं किसी जंगल में एक बहेलिये ने जाल बिछाया। उसके जाल में ढेर सारे पक्षी फँस गये। बहेलिया जब उन्हें पकड़ने के लिए आगे बढ़ा तो पक्षी जाल लेकर ही उड़ गये। पक्षी जाल लेकर उड़े जा रहे हैं और बहेलिया पीछे-पीछे दौड़ा जा रहा है रास्ते में उसकी मुलाकात एक साधु से होती है। वे उस बहेलिये से पूछते हैं- यह तुम क्या कर रहे हो, अब इनके पीछे दौड़ने से क्या फायदा ? अरे ! अब तो 'चिड़िया चुग गयी खेत' अब जो बीत गया सो बीत गया अब इसके पीछे दौड़ने से क्या फायदा ?

"बहलिये ने कहा- नहीं महाराज, ऐसा नहीं है, ये पक्षी जाल लेकर तभी तक उड़ सकेंगे जब तक इनके विचारों में सामंजस्य है। जैसे ही इनके विचारों में सामंजस्य नहीं रहेगा इनका संगठन धराशायी हो

जायेगा और मुझे मेरा जाल मिल जाएगा। ठीक ऐसा ही हुआ। पक्षी अभी थोड़े ही दूर बढ़े थे कि आपस में चर्चा होने लगी अब तो बहेलिया पता नहीं कहाँ होगा? चलो कहीं उत्तरा जाए। किसी ने कहा- यहीं उतरा जाए तो कोई कहता है नहीं चलो उस पहाड़ पर उतरेंगे। अब उतरने की बात तय नहीं हो पायी तो विचारों का सामंजस्य समाप्त हो गया, और संगठन टूट गया। वे सभी जाल सहित नीचे गिर गये तथा अंत में बहलिये का उद्देश्य सिद्ध हुआ।"[8]

इस कथा के माध्यम से शिव नारायण सिंह विद्यार्थियों को यह संदेश देना चाहते हैं कि सामंजस्य बाहरी व्यवस्था है और हौसला आंतरिक शक्ति है। कभी-कभी विद्यार्थी सामंजस्य बैठाने का दावा करते हैं, परन्तु परीक्षा के समय में वह अनुकूलता नहीं रख पाते। सामंजस्य बैठा पाना यदि इतना आसान होता तो पक्षी भी बैठा लिए होते तो उन्हें उनका लक्ष्य और जीवनदान अवश्य प्राप्त होता।

शिव नारायण सिंह जी द्वारा लिखी गयी यह संदेशवाहक कथा जो इस तथ्य को निश्चित करती है कि यह जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। जहाँ हमने अपने अन्दर, अपने घर-परिवार के अन्दर, समाज के तथा देश के अन्दर यदि सामंजस्य बैठाना नहीं सीखा तो कहीं-न-कहीं हमारे अन्तःकरण में एक अधूरापन रह जायेगा। इसलिए हमें हर सम्भव प्रयास करना होगा कि हम हर परिस्थिति में, प्रक्रिया में, हर कार्य में सामंजस्य बैठायेंगे तो निश्चित रूप से सफलता की ओर अग्रसर होते चले जायेंगे।

निष्कर्ष- अपने पात्रों के माध्यम से शिव नारायण सिंह जो जमीन तैयार करते हैं उसमें उगने वाली फसल जीवन के यथार्थ की होती है। कहानी आखिर में जो सन्देश दे जाती है उसमें जीवन का यथार्थ निहित होता है। शिव नारायण सिंह का विद्यार्थी प्रमाद, आलस्य, क्रोध और लालच या यूँ कहें षट् विकारों का शिकार होता है। जो एक सामान्य विद्यार्थी के जीवन का आधार है। इन्हीं षट् विकारों लोभ, मोह, मद, मत्सर इत्यादि दुर्गुणों के यथार्थ से मुक्ति दिलाना शिव नारायण सिंह के कथा साहित्य का उद्देश्य होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने कहानी लेखन की पारम्परिक लीक पर चलना कभी श्रेयष्कर नहीं समझा। बल्कि उन्होंने किस्सागोई के स्वयं की भाषा शैली विकसित किया है। जिसमें एक कहानी नहीं बल्कि कहानियों की श्रृंखला होती है, जो मुक्त भाव से वाचिक रूप में अभिव्यक्त होती है। जो अन्ततः अपने 'विद्यार्थियों से...' कथा संवाद का रूप ले लेती है।

सन्दर्भ सूची-

1. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...' खण्ड 03 प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया पृष्ठ सं0 19
2. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...' खण्ड 03 प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया पृष्ठ सं0 123
3. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...' खण्ड 02 प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया पृष्ठ सं0 27
4. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...' खण्ड 03 प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया पृष्ठ सं0 61
5. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...' खण्ड 04 प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया पृष्ठ सं0 163
6. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...' खण्ड 08 प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया पृष्ठ सं0 225
7. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...' खण्ड 03 प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया पृष्ठ सं0 30
8. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से...' खण्ड 03 प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया पृष्ठ सं0 151

शिव नारायण सिंह की बोध कथाओं में सन्निहित जीवन-मूल्य

स्वप्निल सिंह
शोधार्थी
बोधकथा शोध संस्थान
शिवलोक, गोरखपुर उ.प्र.

प्रस्तावना- प्रेस्टिज इण्टर कॉलेज देवरिया का प्रसिद्ध शैक्षणिक संस्थान है। यह संस्थान केवल देवरिया ही नहीं अपितु समूचे उत्तर प्रदेश में विशेष स्थान रखता है। यहाँ के पढ़े हुए छात्र अकादमिक दृष्टि से अपनी पहचान बनाते ही हैं, साथ ही जीवन के विविध क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा, कला एवं चिन्तन से विशेष स्थान सृजित करते हैं। इन छात्रों के भीतर प्रज्ञा, विवेक एवं शील का संचार करने की दृष्टि से शिव नारायण सिंह जी का विशेष योगदान है। एक शिक्षक का कार्य केवल तथ्यों की सूचना भर देना नहीं है अपितु जीवन-संघर्ष में विद्यार्थी अपनी प्रतिभा का सही उपयोग कर सकें, इस हेतु उन्हें तैयार करना है। इस महत्त्वपूर्ण अर्थ में शिव नारायण सिंह जी की विशेष भूमिका रही है। दशकों से वह शिक्षण एवं प्रशासन में अपनी दक्षता एवं कुशलता का परिचय देते रहे हैं। उनके लिए सूचनाओं से कहीं अधिक चरित्र निर्माण मायने रखता है। यही कारण है कि अध्यापन करते हुए उन्होंने सदैव विद्यार्थियों को ज्ञानात्मक संवेदन की दृष्टि से निर्मित किया है।

शिक्षक छोटी इकाई भर नहीं है बल्कि वह राष्ट्र-निर्माण एवं नियंता है। उसके आदर्शों पर चलकर विद्यार्थियों की राष्ट्र के नियमन एवं कार्यान्वयन में महत्त्वपूर्ण भागीदारी होती है। विज्ञान के विद्यार्थी होने के कारण शिव नारायण सिंह जी में तार्किक अधिग्रहण एवं घटनाओं को बारीकी से देखने की क्षमता रही है।अपने अध्यापन में उन्होंने साहित्य और विज्ञान दोनों को मिलाकर विद्यार्थियों को ज्ञान दिया ताकि विद्यार्थियों का एकांगी विकास हो। सही अर्थों में कहें तो हमारे मस्तिष्क की संरचना भी तर्क एवं सृजन पर आधारित है, यदि मानव-मस्तिष्क के दोनों कोष्ठकों तर्क एवं सृजन में समुचित तालमेल हो तो भावी पीढ़ियाँ ज्ञान और संवेदन दोनों ही दृष्टियों से सशक्त होंगी।

शिव नारायण सिंह जी ने इन दोनों अर्थों में विद्यार्थियों को ज्ञान देना चाहा है ताकि राष्ट्र के निर्माण एवं संचालन में उनका सही उपयोग हो सके। एक प्रधानाचार्य के रूप में उनका सतत प्रयास रहा कि विद्यार्थियों की समुचित देखभाल हो। इस क्रम में लगभग तीन दशकों से वह छोटी-छोटी बोधकथाओं के माध्यम से विद्यार्थियों की सुप्त चेतना को झंकृत करते रहे हैं, ताकि विद्यार्थी अपने भीतर निहित गुणों को समझ सके, अपनी प्रज्ञा का समुचित उपयोग कर सकें।

बीज शब्द- अन्तस, अहर्निश, तत्ववेत्ता, डेमोक्रिट्स, फर्क, उत्कृष्टता, सुषुप्त, संचय, प्रज्ञा

शोध आलेख- शिव नारायण सिंह जी द्वारा विद्यार्थियों को सुनाई गईं बोध-कथाओं में साहित्य के मर्म के साथ दर्शन की गहरी समझ है। तितली और मधुमक्खी पर आधारित एक बोध-कथा समझने योग्य है। इस बोध-कथा में श्रम के महत्त्व को शिव नारायण जी ने दर्शाया है। मधुमक्खी को प्रतिदिन काम करते हुए देखकर तितली उसे शहद के तालाब को खोजने का प्रस्ताव रखती है किन्तु मधुमक्खी समय व्यर्थ में न गँवाकर लगातार काम करने की कोशिश करती है। जबकि

तितली मधु के तालाब की खोज में अपना बहुत-सा समय गँवा देती है। शिव नारायण सिंह जी इस बोध कथा में कहते हैं- "तितली फिर कहती है मधुमक्खी से क्यों न हम लोग चलकर कहीं बहुत बड़े मधु के तालाब की खोज करें ? मधुमक्खी तितली की बात सुनती है और फिर अपने काम में जुट जाती है, लग जाती है, लगी रहती है। तितली को लगा- मधुमक्खी मेरी बात पर ध्यान नहीं दे रही है लेकिन मुझे तो कुछ ऐसा ही करना चाहिए। तितली निकल जाती है, मधु के तालाब की खोज में।

तितली सुबह से शाम तक मधु के तालाब की खोज करने के बाद रात में लौटती है। इधर मधुमक्खी अपने काम में लगी रहती है, वह भी रात में लौटती है। अब वे कहते हैं "प्रिय विद्यार्थियों, क्या तितली को मधु का तालाब मिला होगा ? तितली खाली हाथ लौटती है और मधुमक्खी अपना काम पूरा करके, मधु का संचय करके लौटती है। मधुमक्खी का काम आप जानते ही हैं, तितली आपने देखी ही है, बताने की ज़रूरत नहीं है।" [1]

यहाँ अंत में शिव नारायण सिंह जी संकेत भर देते हैं कि विद्यार्थियों को एक कथा से क्या सीखना चाहिए ? एक शिक्षक का कार्य यही है, वह अपने विद्यार्थियों को संकेत देता है और विद्यार्थी उसके संकेतों को हृदयंगम कर लेते हैं। आदर्श शिक्षक सदैव नपी-तुली बात करता है ताकि विद्यार्थी उसके रहन-सहन, आचरण एवं जीवन से प्रभावित हो सके। इस बोध कथा के अंत में वह विद्यार्थियों को सूत्र देते हुए कहते हैं- "आप एक कोशिश कीजिए अपनी कमजोरियों को दूर करने की, एक प्रयास कीजिए कि आपके अन्दर कोई कमी रह न जाए। आप निरन्तर लगे रहें, अहर्निश लगे रहें, अपनी कमियाँ खोजें, उन्हें दूर करें।"[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में देख सकते हैं कि अपनी कमियों को देखने और उनका परिहार करने की बात एक शिक्षक द्वारा की जा रही है। निश्चित तौर पर शिक्षक का दायित्व गुरुतर है, वह विद्यार्थियों के भीतर सन्निहित उद्यम एवं विवेक को छोटी-छोटी सीख द्वारा बाहर लाने का कार्य करता है। विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए वह कहते हैं- "आपके अन्दर सब कुछ पहले से ही भरा पड़ा है, बस ज़रूरत है उसे उकेरने की, ज़रूरत है उसे बाहर निकालने की, ज़रूरत है उसका लाभ समाज को पहुँचाने की और इस कार्य को आप बखूबी कर सकते हैं; क्योंकि आपको ऐसा वातावरण मिला हुआ है, ऐसी परिस्थितियाँ आपके साथ हैं, ऐसा परिवेश आपके साथ है, ऐसे गुरुजन आपके साथ हैं जो आपके अन्दर छिपी हुई प्रतिभा को उकेरने के लिए, उसे बाहर निकालने के लिए प्रति क्षण लगे हुए हैं। लेकिन एक छोटी-सी कोशिश आपको भी करनी होगी, आपको भी उनके साथ होना होगा, आपको उनका सहयोग करना होगा, आपको उनकी बताई बातों को मानना होगा और उनके अनुसार आचरण करना होगा।"[3]

एक महत्त्वपूर्ण बोध-कथा 'इच्छा' है जिसमें शिव नारायण सिंह जी ने महर्षि मुद्गल की सेवा-भावना को दिखाया है। उनकी सेवा भावना से प्रसन्न होकर उन्हें स्वर्ग प्रदान किये जाने की घोषणा देवताओं द्वारा की जाती है किन्तु वह इसे स्वीकार नहीं करते हैं, क्योंकि धरती पर रहकर हर किसी प्राणी की सेवा करने की उनकी स्वाभाविक आदत थी। देवताओं द्वारा पूछे जाने पर वह यही कहते हैं कि मुझे धरती पर रहने की इच्छा है क्योंकि स्वर्ग में रहकर मैं अपने इच्छित कार्य को नहीं कर सकूँगा।

इस बोध-कथा के माध्यम से शिव नारायण सिंह जी कहते हैं- "महर्षि मुद्गल ने अपने इच्छित कार्य के लिए स्वर्ग का त्याग कर दिया। बताइए, आप अपने इच्छित कार्य के लिए किसका त्याग कर सकते हैं ? उन कमजोरियों को तो त्याग सकते हैं न, उन बुराइयों को तो त्याग सकते हैं न, उन कमियों को तो अपने पास आने से रोक सकते हैं न, जिनके

कारण आपके इस कार्य में बाधा पड़ रही है।"[4]

एक शिक्षक अपने विद्यार्थियों से किस चीज़ के त्याग करने की बात करेगा ? वह उन्हीं चीज़ों के त्याग की बात कर सकता है जिससे उसके विद्यार्थी श्रेष्ठ हो सकें, उनके भीतर गुणों की प्रतिष्ठा हो सके। ठीक यही बात इस कथा के द्वारा वह करते हैं ताकि विद्यार्थियों के अन्तस की सारी बुराईयाँ दूर हो सकें और वे मनस्वी बन सकें।

'अभ्यास' कथा के माध्यम से शिव नारायण सिंह जी विद्यार्थियों के अन्दर बुद्धिमता व विशिष्टता धारण करने की बात करते हैं। बात उस समय की है जब पाँचो पाण्डव गुरु द्रोण से धनुर्विधा सीख रहे थे। एक दिन युधिष्ठिर का कुत्ता कहीं घूमने के लिए निकलता है। जब वह लौटता है तो सभी लोग देखते हैं कि उसका मुँह बाणों से भरा हुआ है। पाण्डव आश्चर्यचकित हो जाते हैं कि यह कौन-सी धनुर्विद्या है। वे उसे अपने गुरु के पास ले जाते हैं, उन्हें दिखाते हैं और कहते हैं. यह देखिए यह एक विचित्र धनुर्विद्या है, यह तो हम लोगों ने सीखी ही नहीं। कृपा करके इसे हम लोगों को भी सिखाइए। गुरु द्रोण इसे देखकर स्वयं आश्चर्य में पड़ जाते हैं और उनके मुंह से निकल पड़ता है कि यह विद्या तो मुझे भी नहीं आती। यदि यह आपको भी नहीं आती है तो किसे आती है ? क्यों न उसे ही खोज लिया जाये जिसे यह विद्या आती है।

सबकी सहमति एवं कुत्ते की सहायता से वहाँ पहुँच ही जाते हैं जहाँ वह धनुर्धर धनुष विद्या का अभ्यास करने में मग्न है। वे उससे पूछते हैं कि इस कुत्ते की यह हालत तुमने बनाई है ? वह कहता है- हाँ, मैंने ही बनाई है। यह मेरी साधना में बाधा पहुँचा रहा था. इसलिए मैंने इसका मुँह बंद कर दिया है। इसे मारने का मेरा कोई प्रयोजन नहीं था। सभी उससे पूछते हैं. यह विद्या तुमने कहाँ से सीखी और तुम्हारे गुरु कौन है ? वह कहता है. मैंने यह विद्या अपने गुरु द्रोण से सीखी है।

गुरु द्रोण को बहुत आश्चर्य होता है. वे कहते हैं कि मैं तो तुम्हें पहचानता तक नहीं फिर तुम मेरे शिष्य कैसे हो सकते हो ? बालक कहता है– मैंने आपको अपना गुरु माना है और प्रतीक स्वरूप आपकी मूर्ति बनाई है इसी की कृपा से मैंने अभ्यास प्रारम्भ किया और यह विद्या सीखी तो मेरे गुरु आप ही हुए न ?

यहाँ शिव नारायण सिंह बताना चाहते हैं कि एक मिट्टी की मूर्ति के प्रति उस बालक के अन्दर आस्था व गुरु के प्रति जो भाव हृदय में छिपा था उसी ने उसे वह विद्या सिखा दी। इस विद्या के मूल में उसका अहर्निश अभ्यास ही था। वे विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि "प्रिय विद्यार्थियों, आप प्रेक्टिस करते हैं तो निश्चित रूप से कल आपको भी परफेक्ट होना-ही-होना है। अब समय एकदम निकट है, जो आपको देना था वह हम सभी ने दे दिया है। कोर्स आपका पूर्ण हो गया है। हमारी जिम्मेदारी एक हद तक पूरी हो गई है, अब आपको लगना होगा। कैसे लगेंगे ? मैने बताया ही अभ्यास, निरन्तर अभ्यास से।

एकदम लग जाइए, भिड़ जाइए, अभ्यास शुरू कर दीजिए, लगे रहिए। जो भी कठिनाई आपके सामने आती है, जो भी समस्या है, जो भी सवाल है बस उन्हीं में लग जाइए, करते रहिए। देखिए, सब कुछ एकदम परफेक्ट हो जायेगा और आपको आपका लक्ष्य मिल जायेगा। आप अभ्यास प्रारम्भ करें आपको अपने स्तर से पूरे मनोयोग से जुड़ जाना है, अभ्यास जितना अधिक आप कर सकते हैं उतना करने की कोशिश करें, निश्चित रूप से आपको लक्ष्य मिलेगा।"[5]

'पाइथागोरस' के जीवन पर आधारित सच्ची कथा के द्वारा शिव नारायण सिंह जी विद्यार्थियों के भीतर सन्निहित मेधा के जागरण की बात करते हैं। ध्यातव्य है कि पाइथागोरस का बाल्यकाल अत्यंत निर्धनता में बीता। जंगलों से लकड़ियाँ काटकर वह उनकी तह बनाकर बाज़ार में बेचता था। लकड़ियों को सजाने की जो उसकी कला थी वह अद्भुत थी। एक बार डेमोक्रिट्स उसकी लकड़ियाँ खरीदने जाता

है और गट्ठर की लकड़ियों की सुंदर ज्यामितीय रचना देखकर हतप्रभ रह जाता है। वह पाइथागोरस से कहता है कि क्या तुम दुबारा इन लकड़ियों को सजाकर रख सकते हो ? पाइथागोरस द्वारा हर बार लकड़ियों की सुन्दर सजावट से प्रभावित होकर वह कहता है कि मैं तुम्हें अपने साथ ले जाना चाहता हूँ। ग़रीब पाइथागोरस पहले सकुचाता है किन्तु बाद में वह डेमोक्रिट्स के साथ हो लेता है।

शिक्षा ग्रहण करके वह ज्यामितीय का बहुत बड़ा गणितज्ञ बनता है। यहाँ शिव नारायण सिंह जी बताना चाहते हैं कि हर व्यक्ति में कोई-न-कोई गुण है जो प्रकृति ने दिए हैं आवश्यकता है उसे निखारने की। विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए वह कहते हैं- "प्रिय विद्यार्थियों, जरा सोचिए, जब वह बालक पाइथागोरस नहीं था तो उसके अन्दर क्या था ? तब भी उसके अन्दर कुछ था और उसी ने उसे पाइथागोरस बनाया। इस दुनिया में कोई भी ऐसा नहीं है जिसके अन्दर ऐसी कोई बात न हो जिससे वह पाइथागोरस से भी बड़ा वैज्ञानिक, बड़ा गणितज्ञ न बन सकता हो। आप सभी में वह बात निहित है। लेकिन जरूरत किस बात की है ? उस अन्तर्निहित गुण को विकसित करने की, प्रदर्शित करने की और कुछ ऐसा करने की जिससे कोई-न-कोई डेमोक्रिट्स प्रभावित हो और आपको भी उस ऊँचाई तक पहुँचा दे।"[6]

यहाँ वह यह बताना चाहते हैं कि जब तक विद्यार्थी सीखना नहीं चाहेंगे, स्वयं को पूर्ण समर्पण के साथ गुरु के समक्ष रखना नहीं चाहेंगे तब तक कोई भी गुरु कायांतरण नहीं कर सकेंगे। इस बोध कथा में वे बताना चाहते हैं कि आपके आसपास अनगिनत डेमोक्रिट्स हैं जिनसे आप सीख सकते हैं। मुझे यहाँ आदिगुरु दत्तात्रेय याद आते हैं। उन्होंने जीव-जंतुओं से बहुत सीखा क्योंकि उनकी प्रकृति सीखने की थी। उनके 24वें गुरु थे जिसके पास भाँति-भाँति के जीव थे जिन्हें देखकर उन्हें जीवन में सही बोध घटित हुआ। हम भी यदि आँखें खुली रखें तो हमारे आसपास कई उदाहरण हैं जो हमारे जीवन की धूरी को बदल सकते हैं।

इस कथा के माध्यम से शिव नारायण सिंह जी का बोध वाक्य देखने योग्य है, वह लिखते हैं- "ढेर सारे डेमोक्रिट्स हैं इस समय, इसी परिवेश में, ढेर सारे तत्ववेत्ता हैं समाज में, जो आपके अन्तर्निहित गुणों को देखते हैं, समझते हैं, आपके बारे में एक आइडिया फॉर्म करते हैं और आपको आपके उद्देश्य तक पहुँचाते हैं। लेकिन उसके लिए जो आवश्यक बात है वह यह है कि आपको अपने अन्तर्निहित गुणों को बाहर निकालना होगा। जब तक आप ऐसा नहीं करते हैं बताइए, कैसे ऐसा कुछ सम्भव हो सकेगा ? नहीं हो सकेगा।"[7]

कई बार हमें बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं है, हमारे आसपास ही कई ऐसे लोग होते हैं जिनका जीवन हमें सही प्रेरणा दे सकता है बच्चों में जिम्मेदारी का बोध भी आवश्यक है। इसके लिए शिव नारायण सिंह ने बच्चों में बोध जागृत करने के लिए एक कथा के माध्यम से समझाया है। एक बार एक व्यक्ति समुद्र के किनारे टहल रहा था। वह देखता है कि लहरों के साथ छोटी-छोटी मछलियाँ किनारे पर रह जा रही हैं और जब समुद्र का पानी लौट रहा है तो मछलियाँ लौट नहीं पा रही हैं। तब वह आदमी वहाँ पहुंचकर एक मछली को उठाकर पानी में फेकता है। फिर दूसरी को उठाकर फेकता है और इसी क्रम में लगा रहता है।

एक दूसरा आदमी यह सब देख रहा है। उससे कहता है तुम यह क्या कर रहे हो ? तुम्हारे ऐसा करने से क्या फर्क पड़ने वाला है ? फेकने वाला कहता है- बात सही है। लेकिन जिस मछली को पानी में फेंक रहा हूँ उसे तो फर्क पड़ता है, उसके जीवन की रक्षा हो रही है।

इसी प्रकार की कथाओं से बच्चों को जिम्मेदारी का बोध कराया जा सकता है। वे बच्चों से कहते हैं- "यह फर्क पड़ने वाली बात है, आप जरा

महसूस कीजिए। कोई काम आपके जिम्मे है और आप उसे जिम्मेदारी से नहीं करते हैं तो ऐसा थोड़े ही है कि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इस फर्क को सोचकर, समझकर अगर आप ऐसी कोशिश करें कि अपने समक्ष आया एक अवसर भी न चुके तो निश्चित रूप से कल आप शीर्ष पर होंगे, आप अपने उद्देश्य पर होंगे, निश्चित ही आपको आपका लक्ष्य मिलेगा।"[8]

प्रधानाचार्य के रूप में शिव नारायण सिंह जी सदैव विद्यार्थियों के भीतर जिम्मेदारी, उद्यमिता एवं लगन का विकास करते रहे। एक योग्य शिक्षक कभी भी अपने विद्यार्थियों को सूचनाओं तक सीमित नहीं रखता। उसका हर संभव प्रयास रहता है कि विद्यार्थियों को अनुकूल मार्ग प्रदान करे ताकि उनके भीतर विद्यमान प्रतिभा को सही दिशा प्राप्त हो सके। प्रकृति में प्रत्येक जीव के जिम्मे कोई-न-कोई कार्य प्रदत्त है जिसे वह करता है। यह हम पर है कि हम किस कर्मठता एवं निष्ठा से किसी कार्य को संपादित करते हैं।

विद्यार्थियों को प्रेरित करते हुए वे कहते हैं कि- "यहाँ ईश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति के जिम्मे एक निश्चित कार्य दे रखा है। अब यह उसकी जिम्मेदारी है कि वह उसे कितने ढंग से, कितनी ईमानदारी से, कितने सलीके से, कितनी ऊर्जा से और कितनी उत्कृष्टता से सम्पन्न करता है। ईश्वर का वास प्रकृति में है, वह प्रकृति स्वरूप है या यूँ कहूँ यह दुनिया ईश्वर की रचना है। यह भी कहा जा सकता है कि जिसकी रचना इतनी सुन्दर तो वह स्वयं कितना सुन्दर होगा ? इस दुनिया को, इस प्रकृति को बनाने के प्रयास में वह ज़रूर प्रकृतिस्थ हो गया होगा, तभी यह संभव हुआ होगा।"[9]

निश्चय ही प्रकृति ईश्वर की श्रेष्ठ कृति है, इसके कण-कण में उसी लोक-व्यापी प्रभु का वास है। 'मनोबल' नामक एक कथा में विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए शिव नारायण सिंह जी एक राज्य के राजा की कथा कहते हैं जिसके राज्य पर शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया है और सेनापति भी पराजय के डर से दुःखी एवं संतप्त है। यहाँ पर राजा से अनुमति लेकर राजपुरोहित सेनापति की भूमिका का निर्वहन करता है। सभी को लगता है कि राजा की सेना पराभूत होगी किन्तु सैनिक का मनोबल अत्यंत दृढ़ है, वह सैनिकों के भीतर भी उसी ऊर्जा के संचार के उद्देश्य से देवता के मंदिर में जाता है और देवता से पूछता है कि युद्ध में किसकी विजय होगी ?

देवता द्वारा प्राप्त संकेतों को जब सैनिकों के समक्ष रखता है तब सैनिक समझते हैं कि अकेले में राजपुरोहित की मनमानी कल्पना है। किन्तु जब वह सिक्का उछाल कर ब्रह्मांडीय संकेत प्राप्त करता है तो पता चलता है कि इस युद्ध में राजा की विजय होगी। सैनिक अत्यंत उत्साह से युद्ध लड़ते हैं और अंततः राजपुरोहित की अगुआई में सेना जीत जाती है। इस विजय का श्रेय राजपुरोहित को दिया जाता है जबकि वह इसका श्रेय सैनिकों के मनोबल को देता है। वह बताता है कि जो स्वयं अपनी सहायता को उद्धत नहीं होते उनकी सहायता ईश्वर भी नहीं करते, सैनिकों ने अपने ऊपर भरोसा किया जिसका प्रतिफल यह विजय थी।

इस बोध कथा के अंत में शिव नारायण सिंह जी कहते हैं कि- "आप लाख लक्ष्य बनाइए, लाख मानक तय कीजिए लेकिन जब तक आपका मनोबल सुषुप्त अवस्था में रहेगा, आपको विजय नहीं प्राप्त होनी है। आप केवल एक लक्ष्य बनाइए, दृढ़-निश्चय कीजिए और अपने मनोबल को जगाइए कि यह रिजल्ट मुझे मिलना ही है या अमुक चीज मुझे कर ही डालनी है। मैं ऐसा करके ही मानूँगा, चाहे इसके लिए मुझे कोई भी कीमत चुकानी क्यों न पड़े। निश्चित ही आप देखेंगे कि रिजल्ट आपके पक्ष में होगा।"[10]

वास्तव में किसी भी असफलता का अभिप्राय केवल इतना है कि सफलता का प्रयास पूरे मनोयोग से नहीं किया गया। यदि संकल्पित होकर योजनाबद्ध ढंग से किसी कार्य को संपन्न किया जायेगा तो सफलता अवश्य मिलेगी इसमें तनिक भी संदेह नहीं

है। कई बार किसी कार्य को करते हुए योजनाबद्ध ढंग से दैनिक दिनचर्या के अनुकूल भी कार्य किया जा रहा है किन्तु अपेक्षित परिणाम नहीं आ रहा है क्योंकि मन थक जा रहा है या उसकी तीक्ष्णता में कमी आ रही है। इसके लिए आवश्यक है कि योग, प्राणायाम,व्यायाम आदि में मन को लगाया जाए जिससे मन की स्फूर्ति बनी रहे।

'धार' नामक कथा के माध्यम से शिव नारायण सिंह जी विद्यार्थियों को एक लकड़हारे की कथा सुनाते हैं। एक बार एक ठेकेदार ने एक लकड़हारे को कहा कि यदि तुम प्रतिदिन दस पेड़ से अधिक काटते हो तो मैं तुम्हें दस पेड़ों के काटने के मुआवज़े के साथ अतिरिक्त पेड़ काटने की राशि भी दूँगा। लकड़हारा मन-ही-मन बहुत अधिक प्रसन्न होता है। पहले दिन वह दस पेड़ काटने में सफल हो जाता है किन्तु धीरे-धीरे पेड़ काटने की रफ़्तार में क्रमशः कमी आती जा रही है। वह मन-ही-मन दुःखी होता है उसे लगता है कि अत्यधिक बल प्रयोग करने के बाद भी वह अपेक्षित पेड़ नहीं काट पा रहा। जब वह क्लांत मन के साथ ठेकेदार के पास जाता है तो वह उससे पूछता है कि पिछली बार कुल्हाड़ी पर धार कब करवाई थी, इस पर लकड़हारे को चेतना आती है और वह सान चढ़ाकर अपने परिणाम को प्राप्त कर लेता है।

इस बोध-कथा के द्वारा शिव नारायण जी संकेतित करते हैं कि जैसे कुल्हाड़ी पर धार न चढ़ाने से वह भोथरी हो गयी, ठीक वैसे ही हमारे मन को स्फूर्त और तीक्ष्ण करने की आवश्यकता है। यदि प्रतिदिन विद्यार्थी रात्रि में अपने द्वारा संपादित दैनिक कार्यों को आँख बंद कर देखें तो उससे धीरे-धीरे एक संतुलन घटित होगा और भ्रमित मन को साधा जा सकेगा। इस प्रक्रिया के विषय में बात करते हुए वह कहते हैं कि- "मन को पकड़ने की इससे सरल कोई और विधा भी नहीं है।अगर आप ऐसा कर पाते हैं कि सुबह से लेकर शाम तक की रुटीन को क्रम से एक बार भी निहार जाते हैं, याद कर लेते हैं, देख लेते हैं, गौर कर लेते हैं, तो निश्चित रूप से आपकी बुद्धि शार्प हो जाएगी, इतनी शार्प हो जाएगी कि जो चीज़ आप एक बार देख लेंगे वह कभी भूल नहीं पायेंगे, क्योंकि मन को एकाग्र करने का इससे बेहतर तरीका और कोई नहीं है।"[11]

'क्रांति बीज' नामक एक कथा में विद्यार्थियो को संबोधित करते हुये शिव नारायण सिंह जी ने संक्रान्ति का आशय–मिलन संगम, योग, बताया है। उन्होंने विद्यार्थियों के अन्दर क्रांति के बीज को स्थापित करने के उद्देश्य से शिक्षा–व्यवस्था और शिक्षा–पद्धति की ओर दृष्टि भी डाली है, वे कहते है कि प्रतिमाह संक्रान्ति होती है, परन्तु हम संज्ञाशून्य जीवन जीते चले आ रहे हैं। हमारे अंदर की ऊर्जा, दक्षता एवं कुशलता हमारा सही मार्गदर्शन नहीं कर पाती। इस क्रम में उन्होंने यह भी बताया है कि आज की शिक्षा थोपी हुई शिक्षा है जो लादने से पूरी नहीं हो सकती, शिक्षा तो सत्य की खोज है। शिक्षित व्यक्ति ही जीवन के विविध क्षेत्रो में अपनी प्रतिभा, कुशलता, गतिशीलता और नित्य नवीनताओं का प्रतिनिधित्व करता है। इस कथा का एक छोटा-सा किस्सा, जिसमें एक बालक खरगोश को एक पिंजरे में लिए जा रहा था कि अचानक वह गिर पड़ा, पिंजरा खुला और खरगोश भाग गया। बावजूद परेशान होने के वह बालक जोर-जोर से हँसने लगा, उसकी चेतना की दृष्टि से यह ज्ञात हुआ कि खरगोश की मंजिल कहीं और थी और वह भटकता हुआ किसी दूसरे मार्ग की तरफ भाग निकला।

इस बोधकथा के निष्कर्ष में शिव नारायण सिंह जी कहते हैं कि – "हम हैं क्या ? हमें होना क्या है ? इसका महत्त्व यदि विद्यार्थी समझ ले तो जीवन का विस्तार सरल हो जायेगा। शिक्षा मूल्यों की ईकाई है जिसकी व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जो छात्रों के भीतर छिपी सम्भावनाओं को खोजने में, अभिव्यक्त करने में, अंकुरित करने से लेकर परिपक्व होने में तथा उसके

फलित होने तक हमारी सहायता कर सके और हमारा मार्ग प्रशस्त कर सके। सही अर्थो में शिक्षा वास्तव में स्वयं का सृजन है, जिसका सही विकास हमारे अन्दर के सारे सृजनात्मक गुणों को विकसित करता है। शिव नारायण सिंह जी विद्यार्थियो को यह सूत्र देना चाहते हैं कि यदि वे आत्मगत चीजों का विश्लेषण कर उसकी वास्तविकता को अपने जीवन का केन्द्र बनाते हैं तो वे निश्चित ही एक नई प्रकाश, नये संसार की ओर अग्रसर होते हुए दिखाई पड़ेंगे, सही अर्थो में यही शिक्षा की वह विधा होगी, वह मंत्र होगा, वह क्रांति बीज होगा जो मनुष्य को सर्वोत्तम ऊँचाई तथा उनके उद्देश्य तक पहुँचाने में मददगार साबित होगा।"[12]

निष्कर्ष- शिव नारायण सिंह जी बोध कथाओं के माध्यम से विद्यार्थियों के भीतर जीवन मूल्यों का विकास करना चाहते हैं। वह यह जानते हैं कि भविष्य के भारत का निर्माण आज के विद्यार्थियों के कंधे पर ही है। वह जितने अधिक मजबूत रहेंगे देश उतना ही मजबूत होगा। इसलिए उन्हें ऐसी शिक्षा देने की आवश्यकता है जो शारीरिक और मानसिक रूप से सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करने वाली हो। जीवन मूल्यों के विकसित होने से विद्यार्थियों के चरित्र का स्तर ऊपर उठता है। उनमें विवेक जागृत होता है। आलस्य का त्याग करते हैं। कर्तव्य परायणता सीखते हैं। उनका मनोबल और आत्मविश्वास बढ़ता है। उनके भीतर बोध जागृत होता है और बोध जागृत करना ही शिव नारायण सिंह जी का अभीष्ट है।

सन्दर्भ सूची-

1. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 02, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-03
2. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 02, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-03
3. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 02, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-12
4. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 02, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-14
5. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 04, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-277
6. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 02, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-41
7. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 02, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-42
8. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 02, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-30
9. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 06, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-164
10. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 03, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-09
11. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 03, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-14
12. शिव नारायण सिंह, 'विद्यार्थियों से', खण्ड 07, प्रेस्टिज प्रकाशन, देवरिया, पृष्ठ संख्या-542

शिव नारायण सिंह की बोधकथाओं में शिक्षा, संस्कार और जीवन-मूल्य

शिवांश सिंह
शोधार्थी
बोधकथा शोध संस्थान
शिवलोक, गोरखपुर उ.प्र.

सारांश- प्रस्तुत शोध- आलेख का उद्देश्य समकालीन हिंदी बोधकथा साहित्य के महत्त्वपूर्ण रचनाकार शिव नारायण सिंह की बोधकथाओं में निहित शिक्षा, संस्कार और जीवन-मूल्यों का विश्लेषण करना है। 'विद्यार्थियों से...' शीर्षक के अंतर्गत रचित लगभग एक हजार बोधकथाएँ न केवल उनके दीर्घ शैक्षिक अनुभव की उपज हैं, बल्कि मूल्यपरक साहित्य की सशक्त परंपरा को भी आगे बढ़ाती हैं। एक प्रतिष्ठित विद्यालय के प्रधानाचार्य के रूप में कार्य करते हुए शिव नारायण सिंह ने विद्यार्थी- जीवन की मनोवृत्तियों, नैतिक चुनौतियों तथा सामाजिक यथार्थ को अत्यंत सहज, रोचक और प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी बोधकथाएँ शिक्षा को केवल पाठ्यक्रम तक सीमित न रखकर उसे संस्कार, चरित्र-निर्माण और जीवन-दृष्टि से जोड़ती हैं। इस अध्ययन में उनकी बोधकथाओं की विषयवस्तु, उद्देश्य, शैली और मूल्यात्मक चेतना का विवेचन करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि उनका साहित्य आधुनिक समय में नैतिक शिक्षा का एक प्रभावी माध्यम बनकर उभरता है।

बीजशब्द–उत्कृष्ट, सरणि, मन- मस्तिष्क, मापदण्ड,आत्मीय, संवाहिका, निहितधर्म, शिक्षार्जन, सकारात्मक,संवेदनशीलता

भूमिका– हिंदी साहित्य में बोधकथा की परंपरा अत्यंत प्राचीन और समृद्ध रही है। पंचतंत्र, हितोपदेश, जातक कथाएँ तथा लोककथाएँ इस परंपरा की सशक्त आधारशिला हैं। इन कथाओं का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि जीवन के व्यावहारिक और नैतिक पक्षों का बोध कराना रहा है। आधुनिक समय में, जब शिक्षा व्यवस्था प्रतिस्पर्धा, उपभोक्तावाद और तकनीकी दबावों से ग्रस्त होती जा रही है, तब मूल्यपरक साहित्य की आवश्यकता और अधिक प्रासंगिक हो जाती है। ऐसे समय में शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ विशेष महत्त्व रखती हैं।

शिव नारायण सिंह एक अनुभवी शिक्षाविद्, प्रधानाचार्य और संवेदनशील कथाकार हैं। उनके द्वारा रचित 'विद्यार्थियों से...' शीर्षक बोधकथाएँ शिक्षा-जगत के वास्तविक अनुभवों से उपजी हैं। ये कथाएँ विद्यार्थियों को केवल ज्ञान नहीं देतीं, बल्कि उन्हें जीवन जीने की कला सिखाती हैं। प्रस्तुत शोध में इन्हीं बोधकथाओं के माध्यम से शिक्षा, संस्कार और जीवन-मूल्यों की भूमिका का विश्लेषण किया गया है।

शिव नारायण सिंह का रचनात्मक व्यक्तित्व– शिव नारायण सिंह का रचनात्मक व्यक्तित्व उनके दीर्घ और समर्पित शैक्षिक जीवन की गहराई से अनुप्राणित है। प्रधानाचार्य के रूप में उन्होंने वर्षों तक विद्यार्थियों, शिक्षकों और अभिभावकों के साथ प्रत्यक्ष, जीवंत और संवेदनशील संवाद स्थापित किया। यही अनुभव उनकी बोधकथाओं की मूल शक्ति बनकर उभरता है। उनकी कथाओं में उपदेशात्मकता का बोझ नहीं, बल्कि संवाद, अनुभव और उदाहरण की सहज उपस्थिति है। वे नैतिकता को आरोपित नहीं करते, बल्कि जीवन की स्वाभाविक परिस्थितियों में इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि वह स्वयं पाठक के मन में प्रतिष्ठित हो जाती है। विद्यालय, कक्षा, छात्र-जीवन, गुरु-शिष्य संबंध, परिवार और समाज, इन सबके इर्द-गिर्द रचा गया उनका कथालोक पाठक को जाना-पहचाना प्रतीत होता है, जिससे उनकी कथाओं की प्रभावशीलता और विश्वसनीयता अनेक गुना बढ़ जाती है।

शिव नारायण सिंह का रचनात्मक व्यक्तित्व

मूलतः एक सजग शिक्षक, संवेदनशील कथाकार और मूल्य-चिन्तक के रूप में विकसित हुआ है। उनकी बोधकथाएँ केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पुनर्जागरण का एक सशक्त रचनात्मक उपक्रम हैं। "कथा साहित्य में बहुत सारी कथाएँ मात्र पठनीयता या श्रोता को अपने साथ बाँधे रखने की क्षमता के कारण महत्त्वपूर्ण रही हैं, शिव नारायण सिंह का कथा-संसार भी ऐसी तमाम कथाओं से भरा पड़ा है। उसके ऊपर छात्रों से उद्बोधन और संवाद का आवरण चढ़ा हुआ है। ऐसी ही आवरण की कई परतों में लपेटकर छोटी सी कथा को पेश करना शिव नारायण सिंह के किस्सागोई की विषेषता है।"[1]

वे आधुनिकता के नाम पर हो रहे मूल्य-विस्थापन के विरुद्ध खड़े होकर परम्परा, नैतिकता और मानवीयता के पक्ष में सार्थक वैचारिक हस्तक्षेप करते हैं। यह हस्तक्षेप किसी प्रतिरोधी घोषणापत्र के रूप में नहीं, बल्कि कथा की सहज, आत्मीय और ग्राह्य विधा के माध्यम से सम्पन्न होता है, जिससे उसका प्रभाव व्यापक और स्थायी बनता है।

उनकी रचनात्मक ऊर्जा का मूल स्रोत उनका उत्साह, लगन और निष्ठा है। निराशा और हताशा के वातावरण में भी वे आशावादी बने रहते हैं और इस विश्वास को दृढ़ता से साधे रखते हैं कि यदि युवाओं से निरन्तर संवाद किया जाए और कथा के माध्यम से उन्हें जीवन-मूल्यों से जोड़ा जाए, तो सकारात्मक परिवर्तन संभव है। उनकी बोधकथाएँ इसी विश्वास की सृजनात्मक परिणति हैं, जो युवाओं को आत्मचिन्तन, नैतिक दृढ़ता और सांस्कृतिक बोध की ओर उन्मुख करती हैं।

'विद्यार्थियों से...' शीर्षक बोधकथाओं की सबसे बड़ी विशेषता उनकी समग्र ज्ञानात्मक संरचना है, जिसमें शिव नारायण सिंह ने कथात्मक माध्यम से विश्व की विविध ज्ञान- विज्ञान परम्पराओं का सर्जनात्मक गुम्फन किया है। इन कथाओं में जीव-जगत और वनस्पति-जगत से लेकर खगोल, भूगोल, सांख्य दर्शन, धर्म एवं नीति-नियामक तत्त्व, तत्त्व-चक्र, वेदान्त, पाश्चात्य-दर्शन तथा पौराणिक आख्यान सभी को नए परिवेश और समकालीन संदर्भों में प्रस्तुत किया गया है। यह प्रस्तुति न तो केवल सरलीकरण है और न ही दुरूह दार्शनिकता; बल्कि सरलता और कठिनता के संतुलित संयोग से निर्मित ऐसी कथा-विधा है, जो विद्यार्थियों की बौद्धिक क्षमता को क्रमशः विकसित करती है।

शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ भारतीय कथात्मक परम्परा की उस दीर्घ, समृद्ध और यशस्वी विरासत से जुड़ी हैं, जिसकी जड़ें लगभग दो सहस्र वर्ष प्राचीन बोधकथाओं में निहित हैं। किंतु उनकी विशिष्टता इस तथ्य में है कि वे इस परम्परा को आज की परिवर्तित सामाजिक, शैक्षिक और नैतिक परिस्थितियों के अनुरूप अत्यंत विद्वत्तापूर्ण ढंग से पुनर्सृजित करते हैं। यह कार्य मात्र अनुकरणीय नहीं, बल्कि अद्‌भुत और अप्रतिम रचनात्मक कौशल का परिचायक है। उनकी किस्सागोई में सहजता, प्रवाह और तात्कालिकता का ऐसा समन्वय मिलता है, जो उन्हें विशिष्ट कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

जहाँ कथा-सम्राट प्रेमचन्द की किस्सागोई सामाजिक यथार्थ और मानवीय करुणा की सघन अभिव्यक्ति के लिए जानी जाती है, वहीं प्रधानाचार्य शिव नारायण सिंह की आशु किस्सागोई तत्काल प्रभाव उत्पन्न करने वाली शिक्षाप्रद कथन-शैली के रूप में सामने आती है। इस प्रकार उनकी बोधकथाएँ प्राचीन भारतीय बोधकथा-परम्परा, आधुनिक शिक्षण-पद्धति और प्रभावी किस्सागोई का सृजनात्मक संगम प्रस्तुत करती हैं, जो उन्हें समकालीन साहित्य और शिक्षा-जगत में एक विशिष्ट, प्रभावशाली और प्रेरक रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

शिक्षा की अवधारणा– शिव नारायण सिंह की बोधकथाओं में शिक्षा की अवधारणा केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं है। उनके अनुसार शिक्षा वह जीवनोपयोगी प्रक्रिया है, जो व्यक्ति को विवेकशील, उत्तरदायी और संवेदनशील नागरिक बनाती है। उनकी कथाएँ स्पष्ट रूप से यह संदेश देती हैं कि अंक, परीक्षाएँ और डिग्रियाँ जीवन की सफलता का अंतिम मापदंड नहीं हैं। "किसी भी सिद्धांत को जिस सहजता के साथ कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है, उसे कोरे वक्तव्य के माध्यम से

नहीं। बच्चों के सुकुमार मनोमस्तिष्क पर सिखाने का मनोरंजनपरक माध्यम सबसे कारगर सिद्ध होता है।"[2]

'विद्यार्थियों से...' शीर्षक से प्रस्तुत बोधकथाओं की कथा-विधा उनकी शिक्षण-पद्धति का उत्कृष्ट उदाहरण है, जो कान्ता सम्मित उपदेश की परम्परा का आधुनिक और प्रभावी रूप है। इसमें उपदेश बोझिल न होकर कथा के माध्यम से सहज, स्वाभाविक और ग्राह्य बन जाता है। शिव नारायण सिंह की अनेक बोधकथाओं में ऐसे विद्यार्थियों का चित्रण मिलता है, जो अत्यधिक प्रतिभाशाली होते हुए भी अहंकार, आलस्य या अनुशासनहीनता के कारण जीवन में असफल हो जाते हैं। इसके विपरीत, साधारण प्रतिभा वाले विद्यार्थी परिश्रम, अनुशासन और सकारात्मक दृष्टिकोण के बल पर सफलता प्राप्त करते हैं। इस प्रकार उनकी कथाएँ शिक्षा को जीवन के वास्तविक अनुभवों से जोड़ती हैं और यह स्पष्ट करती हैं कि चरित्र, कर्मठता और नैतिकता ही सच्ची शिक्षा की पहचान हैं।

विशेषतः प्रार्थना सभा जैसे औपचारिक किन्तु संवेदनशील समय में ये बोधकथाएँ कोमलमति किशोरों और युवा विद्यार्थियों के मन में सहज ही ज्ञानदीप प्रज्ज्वलित करने में समर्थ सिद्ध होती हैं। "सच्ची शिक्षा वही है जो लोगों की जीवन प्रणाली से सम्बद्ध हो। आज तक ऐसा न करने से, शिक्षा अप्रासंगिक और निष्प्रभावी बन कर रह गयी है। मूल्य वास्तविक जीवन का चिंतन है और वास्तविक जीवन पर लागू होता है। शिक्षकों को इस बात का अहसास पैदा करना चाहिए कि हमारे जीवन और शिक्षार्जन दोनों के लिए मूल्य कितने महत्त्वपूर्ण हैं।"[3]

'विद्यार्थियों से...' के माध्यम से शिव नारायण सिंह शिक्षा की उस मूल अवधारणा को पुनर्स्थापित करते हैं, जिसका उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि शिष्य के अंतःकरण का परिमार्जन कर उसे सन्मार्ग की ओर अग्रसर करना है। उनकी दृष्टि में शिक्षा परीक्षा, अंक या पद तक सीमित प्रक्रिया नहीं, बल्कि मनुष्य-निर्माण की साधना है, जिसमें ज्ञान के साथ विवेक, संवेदना और नैतिक चेतना का संतुलित समन्वय आवश्यक है। वे किसी बाह्य अनुशासन या कठोर उपदेश के माध्यम से नहीं, बल्कि आत्मीय संवाद और जीवन-संगत उदाहरणों द्वारा शिष्य के हृदय तक पहुँचते हैं। इसी कारण 'विद्यार्थियों से...' केवल कथाओं का संकलन न होकर शिक्षक और शिष्य के बीच विश्वास, स्नेह और मूल्य-संस्कार की सेतु बन जाता है।

शिव नारायण सिंह का यह स्वप्न कि भारत पुनः अपने खोए हुए गौरव को प्राप्त करे, केवल भावुक आकांक्षा नहीं है, बल्कि इस दृढ़ विश्वास पर आधारित है कि यदि शिक्षा अपने मूल उद्देश्य की ओर लौटे और आचार्य अपने आचरण व चिंतन से विद्यार्थियों के लिए आदर्श बने, तो राष्ट्र का पुनर्निर्माण संभव है। "शिक्षा का उद्देश्य है कि वह व्यक्ति को शारीरिक एवं मानसिक रूप से पूरी तरह तैयार करे और उसे इस योग्य बनाए कि वह अपने जीवन-मूल्यों और चरित्र निर्माण के संबंध में विश्वास के साथ निर्णय ले सकें तथा अपने पुरुषार्थ को प्राप्त कर सकें।"[4]

शिव नारायण सिंह भली-भाँति समझते हैं कि राष्ट्र की वास्तविक शक्ति संस्थाओं या व्यवस्थाओं में नहीं, बल्कि संस्कारवान युवाओं में निहित होती है। इस प्रकार 'विद्यार्थियों से...' शिक्षा की उस भावपरक, समग्र और जीवनोन्मुख अवधारणा का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें ज्ञान, संस्कार और चरित्र का संतुलित विकास निहित है। यह कृति हमें स्मरण कराती है कि जब शिक्षा अंतःकरण को आलोकित करती है, तभी व्यक्ति, समाज और राष्ट्र तीनों का सच्चा उत्थान संभव होता है।

संस्कारों की भूमिका– संस्कार भारतीय संस्कृति की आत्मा हैं। शिव नारायण सिंह की बोधकथाओं में संस्कारों का अत्यंत सशक्त चित्रण मिलता है। वे सत्य, ईमानदारी, करुणा, अनुशासन, गुरु-आदर, माता-पिता का सम्मान, सहानुभूति और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे संस्कारों को कथा के माध्यम से स्थापित करते हैं। उनकी बोधकथाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि संस्कारहीन शिक्षा समाज के लिए घातक सिद्ध हो सकती है। अनेक कथाओं में यह दिखाया गया है कि जब शिक्षा संस्कारों से विमुख हो जाती है, तब व्यक्ति ज्ञानवान होते हुए भी मानवीय

मूल्यों से रिक्त रह जाता है। "संसार में रहकर, जीवन में ख्याति पाने के लिये, नीतिमान बनने की नितान्त आवश्यकता है। नीति से हम अकेले होने पर भी अनन्त सेना को परास्त कर सकते हैं और एक स्थान पर बैठे-बैठे समस्त भूमण्डल पर शासन कर सकते हैं। जो व्यक्ति जितना अच्छा नीतिज्ञ है, वह उतना ही दुर्जय है।"[5]

आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था में जैसे-जैसे शैक्षिक गुणवत्ता में गिरावट आयी है, वैसे-वैसे मानवीय और नैतिक मूल्यों की चर्चा अधिक मुखर होती गयी है। किंतु प्रायः यह मान लिया गया कि नैतिक मूल्यों की स्थापना केवल पाठ्यक्रम में कुछ विषय जोड़ देने मात्र से संभव हो सकती है, जबकि वास्तविकता यह है कि मूल्य-बोध का विकास औपचारिक पाठ्यवस्तु से नहीं, बल्कि जीवंत अनुभव और व्यावहारिक संवाद से होता है। "बाहरी संसार में हम राजनैतिक, वैधानिक और सामाजिक तौर पर व्यवस्था लाने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन भीतर से हम भ्रान्त, अनिश्चित, दुश्चिन्ता और द्वन्द्व से घिरे हुए हैं। इसलिए जब तक भीतर व्यवस्था स्थापित नहीं होती तब तक मानव जीवन को हमेशा खतरा रहेगा।"[6]

इस गहरी सच्चाई को शिव नारायण सिंह ने अपनी सहज बुद्धि और दीर्घ शैक्षिक अनुभव के आधार पर भली-भाँति समझा। शिव नारायण सिंह ने नैतिक शिक्षा के लिए एक अद्‌भुत और प्रभावी उपाय अपनाया; प्रतिदिन अपने विद्यार्थियों से सीधा संवाद करने का। वे कक्षा की औपचारिक सीमाओं से बाहर निकलकर विद्यार्थियों से आत्मीय बातचीत करते हैं और बोधकथाओं के माध्यम से जीवन-मूल्यों को सहज रूप में संप्रेषित करते हैं। "विद्यार्थियों के लिए तथा मानव समाज के लिए वाचिक शैली में विद्यार्थियों के सांस्कृतिक प्रशिक्षण का इससे बेहतर उपाय क्या हो सकता है? जिसमें व्यक्ति को जीवन में सफल होने के लिए सच्ची प्रेरणा, वास्तविक अनुभूति, आदर्श आलोक, सच्ची लगन, उत्तम राह, आत्मविश्वास, सकारात्मक सोच जैसे आयाम दिए जाते हैं।"[7]

उनकी कथाएँ उपदेशात्मक न होकर अनुभवजन्य होती हैं, जिससे विद्यार्थी बिना किसी दबाव के सत्य, संवेदना, उत्तरदायित्व और मानवीयता जैसे मूल्यों को आत्मसात कर लेते हैं।''प्राचीन काल से हमारे देश में नैतिक-शिक्षा पर गंभीरता से चिन्तन किया गया है। संस्कृत साहित्य में नीति- शास्त्र नैतिक-शिक्षा पर बल देता है। इसीलिए नीति- शास्त्र के प्रणेता शुक्राचार्य ने नीति-शास्त्र को लोक-हितकारी बताया है। नैतिक-शिक्षा ही समाज को सुदृढ़ आधार दे सकती है।"[8]

शिवनारायण सिंह की बोधकथाएँ उस मूल्यात्मक रिक्तता को भरती हैं, जिसे आधुनिक शिक्षा-प्रणाली अक्सर अनदेखा कर देती है। वे शिक्षा को सार्थक, संपूर्ण और जीवनोपयोगी बनाने का कार्य करती हैं तथा यह सिद्ध करती हैं कि नैतिक मूल्यों की सच्ची स्थापना संवाद, उदाहरण और कथात्मक अनुभव के माध्यम से ही संभव है।

जीवन- मूल्यों का प्रतिपादन– शिव नारायण सिंह की बोधकथाओं का केंद्रीय उद्देश्य जीवन-मूल्यों का विकास है। उनकी कथाएँ विद्यार्थियों को जीवन की वास्तविकताओं से परिचित कराती हैं और उन्हें सही-गलत के बीच भेद करना सिखाती हैं। परिश्रम, धैर्य, समय-प्रबंधन, आत्मानुशासन, सहयोग और कर्तव्यनिष्ठा जैसे मूल्य उनकी कथाओं में बार-बार उभरकर सामने आते हैं। ये जीवन-मूल्य केवल विद्यार्थी-जीवन तक सीमित नहीं रहते, बल्कि संपूर्ण मानवीय जीवन को दिशा प्रदान करते हैं।

उनकी बोधकथाएँ पाठक को आत्ममंथन के लिए प्रेरित करती हैं। "वास्तव में मानवमूल्य एक प्रकार का अनुशासन, एक आदर्श है जिसके पालन द्वारा जीवन में व्यवस्था और संगति आती है। इन मूल्यों का उल्लंघन जीवन में विभिन्न समस्याओं और असन्तुलन को आमंत्रित करता है। अतः मूल्यों का पालन और उनकी रक्षा मानवजीवन की अनिवार्य शर्त है।"[9]

शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ अपने मूल में चरित्र-निर्माण, राष्ट्रीय चेतना, प्रकृति और पर्यावरण के प्रति अनुराग तथा लोक-चेतना से गहरे सरोकार को समेटे हुए हैं। ये कथाएँ केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि जीवन-मूल्यों की सशक्त संवाहिका हैं।

इनके माध्यम से पाठक में नैतिक दृढ़ता, सामाजिक उत्तरदायित्व और मानवीय संवेदना का विकास होता है। ये कथाएँ व्यक्ति को सत्य, ईमानदारी, करुणा और साहस जैसे मूल्यों की ओर उन्मुख करती हैं। मानव चरित्र का निर्माण कर कठिन परिस्थितियों में भी नैतिक पथ पर अडिग रहने की प्रेरणा इन कथाओं की केन्द्रीय विशेषता है। इसके साथ ही, इनमें राष्ट्रीयता की भावना स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होती है, जो पाठक को अपने समाज, संस्कृति और राष्ट्र के प्रति कर्तव्यबोध से जोड़ती है।

इन बोधकथाओं में प्रकृति और पर्यावरण के प्रति गहन अनुराग भी दृष्टिगोचर होता है। प्रकृति को केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि जीवन की सहचरी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पर्यावरण संरक्षण का संदेश सरल कथानकों के माध्यम से पाठक के मन में सहजता से स्थापित हो जाता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ लोक-चेतना से गहरे रूप में सम्पृक्त हैं। ये कथाएँ समाज में व्याप्त अमानवीयता, अन्याय और असंवेदनशीलता के विरुद्ध खड़े होने का साहस प्रदान करती हैं। पाठक को अन्याय का प्रतिकार करने और मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए प्रेरित करती हैं। जीवन के प्रत्येक चरण में ये कथाएं मार्गदर्शक दीपक के समान हैं, जो व्यक्ति को नैतिकता, मानवता और सामाजिक जिम्मेदारी के पथ पर अग्रसर करती हैं।

कथाशैली और भाषा– शिव नारायण सिंह की कथाशैली सरल, सहज और संवादात्मक है। भाषा में आडंबर नहीं, बल्कि स्पष्टता और प्रवाह है। यही कारण है कि उनकी बोधकथाएँ विद्यार्थियों के साथ-साथ सामान्य पाठकों के लिए भी ग्राह्य हैं। कथा का आकार छोटा होने के बावजूद उसमें अर्थ की गहराई विद्यमान रहती है। उनकी शैली की विशेषता यह है कि वे प्रत्यक्ष उपदेश से बचते हैं और कथा के अंत में एक बोध-वाक्य या संकेत छोड़ते हैं, जिससे पाठक स्वयं निष्कर्ष तक पहुँचता है।

शिव नारायण सिंह जी एक सिद्धहस्त किस्सागो हैं, जिनकी सृजनात्मक प्रतिभा अद्वितीय है। उनकी बोधकथाओं की प्रमुख विशेषता यह है कि वे समसामयिक घटनाओं को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में पिरोकर उन्हें वैचारिक एवं नैतिक मूल्यों से समृद्ध कर देते हैं। उनकी कथाकला में जहाँ सशक्त कथ्य की स्पष्टता है, वहीं भाषा-शैली में रसात्मकता और प्रवाह भी सहज रूप से विद्यमान है। छोटी- छोटी बोधकथाओं के माध्यम से वे बाल साहित्य को एक उद्देश्यपूर्ण दिशा प्रदान करते हैं तथा कहानी के वास्तविक स्वरूप और उसके सामाजिक- शैक्षिक दायित्व को पूर्णतः चरितार्थ करते हैं। उनकी कथाएँ जीवन-निर्माण से जुड़े विविध प्रश्नों के समाधान प्रस्तुत करती हैं। पात्रता और व्यक्तित्व-विकास की प्रक्रिया को सहज रूप में उद्घाटित करती हैं तथा बाल मन को सकारात्मक दिशा देती हैं।

शिव नारायण सिंह बाल मनोविज्ञान के गहन अध्येता के रूप में प्रेरक व्यक्तित्वों, सटीक संदर्भों, सार्थक उद्धरणों एवं सशक्त दृष्टांतों के माध्यम से बालकों के मन में आत्मविश्वास और दृढ़ता का बीज रोपित करते हैं। यही बीज आगे चलकर जीवन की चुनौतियों से जूझने और सफलता प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करता है। इस प्रकार शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ बाल साहित्य के मूल उद्देश्य- चरित्र निर्माण और मूल्यबोध को सार्थक रूप में साकार करती हैं।

बोधकथाकार शिव नारायण सिंह भाषा के सशक्त शिल्पी हैं। उनकी भाषा सरल, सहज और स्वाभाविक होते हुए भी मिश्री की-सी मिठास से युक्त है। आत्मीय कथन-शैली के माध्यम से वे अपनी वाचिक बोधकथाओं को पाठक और श्रोता के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि कथा-कथन का उद्देश्य पूर्णतः साकार हो उठता है। उनकी शैली में संवादात्मकता प्रमुख है, जिससे पाठक कथा से सहज ही जुड़ जाता है। "भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम भर नहीं, जनपदीय साहित्य, संस्कृति एवं सभ्यता की सरणि भी होती है। अपने वैशिष्ट्य से यह मनुष्य की निजता, जनजीवन में प्रचलित विविध कला-रूप एवं उनकी राष्ट्रीयता को भी रूपायित करती है।"[10]

विशेष रूप से विद्यार्थियों से संवाद स्थापित करने के लिए श्री सिंह जिस भाषा का प्रयोग करते हैं,

वह आम बोलचाल की हिंदी है। इस भाषा की अनगढ़ता और सहजता अपने स्वाभाविक रूप में आकर्षण उत्पन्न करती है। छात्रों के साथ कथा-संवाद के कारण उनके कथाख्यानों की भाषा शास्त्रीय लेखन की भाषा न होकर जीवंत वाचिक भाषा बन जाती है। इसमें ठेठ भोजपुरी शब्दों का स्वच्छंद प्रयोग मिलता है, वहीं तत्सम शब्दावली के कारण भाषा संस्कृतनिष्ठ गरिमा भी प्राप्त करती है। साथ ही उनकी भाषा पर अंग्रेज़ी के प्रभाव के संकेत भी स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं, जो समकालीन भाषिक परिवेश का स्वाभाविक परिणाम हैं। निःसंदेह भाषागत परिपक्वता और अभिव्यक्तिगत विविधता किसी भी रचना को कालजयी बनाने में सहायक होती है।

भाषा मानवीय अनुभूति और विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है; इसके द्वारा ही संस्कृति और ज्ञान का संप्रेषण सम्भव होता है। इस संदर्भ में विद्यानिवास मिश्र का कथन अत्यंत प्रासंगिक है कि "भाषा संस्कृति की वाहिका ही नहीं होती, बल्कि संस्कृति की बनावट भी होती है; भाषा संस्कृति को ढोती नहीं, बल्कि उसमें ओत-प्रोत रहती है।"[11]

स्पष्ट है कि लेखक अपनी भाषा के माध्यम से उसमें निहित संस्कृति और ज्ञान का परिमार्जन करता है तथा उसे व्यापक सामाजिक संदर्भ प्रदान करता है। इसी दृष्टि से शिव नारायण सिंह की भाषा-शैली न केवल कथ्य को प्रभावशाली बनाती है, बल्कि बाल साहित्य को सांस्कृतिक और मूल्यपरक धरातल भी प्रदान करती है।

समकालीन संदर्भों में प्रासंगिकता– प्रधानाचार्य शिव नारायण सिंह द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किया गया अभिनव प्रयोग समकालीन शैक्षिक चुनौतियों के समाधान का सशक्त मॉडल प्रस्तुत करता है। वे प्राचीन भारतीय कथा साहित्य को केवल अतीत की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में नहीं, बल्कि आधुनिक जीवन की जटिलताओं को समझने का प्रभावी माध्यम बनाते हैं। रामायण और महाभारत जैसी महाकाव्य कथाओं में निहित धर्म, सत्य, न्याय, कर्तव्य और नैतिकता के मूल्य जब आज के सामाजिक, नैतिक और व्यक्तिगत संघर्षों से जोड़े जाते हैं, तो वे विद्यार्थियों के लिए अत्यंत प्रासंगिक बन जाते हैं। इस शिक्षण पद्धति की समकालीन प्रासंगिकता इस तथ्य में निहित है कि यह ज्ञान को केवल पुस्तकीय स्तर पर सीमित नहीं रखती, बल्कि उसे जीवनोपयोगी बनाती है।

कथा आधारित शिक्षण के माध्यम से विद्यार्थी वर्तमान परिस्थितियों जैसे- प्रतिस्पर्धा, नैतिक दुविधा, सामाजिक उत्तरदायित्व और आत्म-निर्णय को गहराई से समझने लगते हैं। इससे उनमें आलोचनात्मक चिंतन, समस्या- समाधान क्षमता और संतुलित व्यक्तित्व का विकास होता है। उनका यह दृष्टिकोण आधुनिक शिक्षा में मूल्य-आधारित शिक्षण को पुनः प्रतिष्ठित करता है और यह सिद्ध करता है कि प्राचीन कथा साहित्य आज भी समकालीन समाज के लिए मार्गदर्शक और प्रेरणास्रोत बना रह सकता है। इन बोधकथाओं की विशेषता यह है कि वे शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन की प्रक्रिया न मानकर उसे जीवन-निर्माण की साधना के रूप में प्रस्तुत करती हैं। शिव नारायण सिंह विद्यार्थियों को यह बोध कराते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य केवल परीक्षा उत्तीर्ण करना या आजीविका प्राप्त करना नहीं, बल्कि एक संवेदनशील, नैतिक और जागरूक नागरिक का निर्माण करना है।

आज का विद्यार्थी अनेक मानसिक, सामाजिक और नैतिक चुनौतियों से घिरा हुआ है। प्रतियोगिता, तनाव, भौतिकता और मूल्य-संकट के इस दौर में शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ मार्गदर्शक की भूमिका निभाती हैं। ये कथाएँ विद्यार्थियों को संतुलित, संवेदनशील और जिम्मेदार नागरिक बनने की प्रेरणा देती हैं। समकालीन संदर्भों में इन बोधकथाओं की प्रासंगिकता इस तथ्य में निहित है कि आज का विद्यार्थी विखंडित ज्ञान के दबाव में जी रहा है।

शिव नारायण सिंह की कथाएँ इस विखंडन को तोड़कर ज्ञान को समेकित दृष्टि प्रदान करती हैं। उनकी बोधकथाएँ विद्यालयी पाठ्यक्रम, नैतिक शिक्षा कार्यक्रमों और अभिभावक-शिक्षक संवाद में उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। विज्ञान, दर्शन, नीति और संस्कृति, सभी एक- दूसरे के पूरक के रूप में कथाओं में उपस्थित हैं, जिससे विद्यार्थी में समग्र चिंतन,

तर्कशीलता और मूल्यबोध का विकास होता है।

समकालीन समाज में नैतिक मूल्यों का क्षरण और आयातित संस्कृति का अंधानुकरण आज के सबसे दुर्भाग्यपूर्ण पक्षों में से एक है। राष्ट्र के भावी कर्णधार युवाओं की जीवन-दृष्टि और चिंतन-शैली में बढ़ती विकृति को देखकर यह अनुभूति सहज होती है कि हमारे पूर्वजों द्वारा संचित सांस्कृतिक और नैतिक विरासत मानो मौन रुदन कर रही हो। ऐसे मूल्य-संकट और वैचारिक धुँधलके के बीच यदि कोई आशा की किरण दिखाई दे, तो मन का उत्साहित होना स्वाभाविक है। इसी संदर्भ में शिव नारायण सिंह का रचनात्मक व्यक्तित्व विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करता है।

शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ गंभीर एवं तर्कयुक्त होते हुए भी सहज संप्रेषणीय हैं। यही कारण है कि ये कथाएँ विद्यार्थियों के मानसिक, नैतिक और बौद्धिक विकास की सेतु-स्थली बनती हैं। वे जिज्ञासा को जगाती हैं, प्रश्न पूछने की प्रवृत्ति विकसित करती हैं और उत्तर खोजने की वैचारिक क्षमता को सुदृढ़ करती हैं। वे ज्ञान, मूल्य, तर्क और संवेदना का ऐसा सृजनात्मक समन्वय प्रस्तुत करती हैं, जो आधुनिक शिक्षा और समाज दोनों के लिए अत्यंत आवश्यक और उपयोगी सिद्ध होता है। इस प्रकार, समकालीन संदर्भों में शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ बहुआयामी प्रासंगिकता रखती हैं।

निष्कर्ष– कहा जा सकता है कि शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ शिक्षा, संस्कार और जीवन-मूल्यों का सशक्त समन्वय प्रस्तुत करती हैं। उनका साहित्य केवल बाल या विद्यार्थी साहित्य नहीं, बल्कि व्यापक मानवीय सरोकारों से जुड़ा हुआ है। 'विद्यार्थियों से...' शीर्षक के अंतर्गत रचित बोधकथाएँ आधुनिक हिंदी साहित्य में मूल्यपरक रचना की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हैं। शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ यह सिद्ध करती हैं कि यदि शिक्षा को संस्कार और जीवन-मूल्यों से जोड़ा जाए, तो वह समाज को सही दिशा दे सकती है। इस दृष्टि से उनका रचनात्मक अवदान हिंदी बोधकथा परंपरा में विशेष स्थान रखता है।

संदर्भ सूची–

1. शिवमूर्ति (2013) प्राचीन बोधकथा परम्परा और आधुनिकता के बीच सेतु, मूल्यों के निर्माण कलश, प्रभात पेपरबैक्स नई दिल्ली, पृष्ठ-101
2. मिश्र, डॉ. विनोद कुमार (2013) गुरु-शिष्य परंपरा को बचाने का एक स्तुत्य प्रयास मूल्यों के निर्माण कलश, प्रभात पेपरबैक्स नई दिल्ली, पृष्ठ 216
3. बेथेल, डेल एम. (2000), सृजनशील जीवन और शिक्षा, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, पृष्ठ 48
4. पाण्डेय, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (2013) नैतिकता के बीज-वपन करते बोधकथाओं के क्रमिक खंड मूल्यों के निर्माण कलश, प्रभात पेपरबैक्स नई दिल्ली, पृष्ठ 41
5. झा, डॉ. रामनारायण, झा, डॉ. रणजीत कुमार (2018), नीति शतकम् जयपुरः जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, निवेदन
6. जे. कृष्णमूर्ति (2001) स्कूलों को पत्र, भाग-2 कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया, पृष्ठ 3
7. डॉ. रेवती रमण (2013) बोधकथाओं की सार्थकता सिद्ध करने का भगीरथ प्रयास, मूल्यों के निर्माण कलश, प्रभात पेपरबैक्स नई दिल्ली, पृष्ठ 73
8. शास्त्री, डॉ. भीमराज शर्मा (2019) संस्कृत साहित्य में नैतिक-शिक्षा एवं राष्ट्रीय चेतना जयपुर, राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द, पृष्ठ 06
9. पंडित, डॉ. जगन्नाथ (2009) सामाजिक प्रतिबद्धता और साहित्य, नमन प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 25
10. नवीन, देवशंकर (2020) साहित्य और समाज की बात, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, भूमिका
11. पुष्पिता (2006), सांस्कृतिक आलोक से संवाद, पं. विद्यानिवास मिश्र से बातचीत भारतीय ज्ञानपीठ पृ.सं. 60

भारतीय ज्ञान परम्परा के संवाहक के रूप में शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ

शिवांगी सिंह
शोधार्थी
बोधकथा शोध संस्थान
शिवलोक, गोरखपुर उ.प्र.

सारांश- भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध ज्ञान परम्पराओं में से एक है, जिसकी मूल चेतना जीवन के सर्वांगीण विकास से सन्नद्ध रही है। इस परम्परा में जहाँ एक ओर ज्ञान को बौद्धिक उपलब्धि माना गया वहीं दूसरी ओर उसे नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक परिष्कार के साधन के रूप में देखा गया। भारतीय संस्कृति में ज्ञान का उद्देश्य मनुष्य को सत्य, धर्म, करुणा, संयम और कर्तव्य के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करना रहा है। भारतीय ज्ञान परम्परा का विकास श्रुति, स्मृति, दर्शन, पुराण, महाकाव्य, लोक साहित्य और कथाओं के माध्यम से हुआ है, जिनमें वेद, उपनिषद और दर्शनशास्त्र ज्ञान के दार्शनिक और तात्विक पक्ष को प्रस्तुत करते हैं। जबकि कथाएँ विशेषतः बोधकथाएँ उस ज्ञान को सरल, सहज और लोक सुलभ बनाती है।

दरअसल बोध कथाएँ भारतीय ज्ञान परम्परा की वह सशक्त माध्यम हैं जिसके द्वारा जटिल जीवन सत्य, नैतिक मूल्य और व्यावहारिक बुद्धि को कथा, प्रतीक, दृष्टांत के माध्यम से संप्रेषित करने का यथेष्टतम प्रयास किया गया। इन कथाओं की शक्ति इस तथ्य में निहित है कि वे उपदेशात्मक होते हुए भी मनोरंजक बनी रहती हैं। इनमें नैतिक उपदेशों के साथ-साथ जीवन की जटिलताओं, विरोधाभासों और यथार्थ स्थितियों का सूक्ष्म चित्रण प्राप्त होता है। इन कथाओं के माध्यम से गुरुकुलों में, राज-दरबारों में, धार्मिक सभाओं में और लोक जीवन में नीति, धर्म और जीवन-दर्शन का संचार किया जाता रहा है।

ये कथाएँ सामाजिक यथार्थ, मानवीय कमजोरियों, राजनीतिक चातुर्य और कूटनीतिज्ञता तथा जीवन की व्यावहारिक जटिलताओं को भी उद्घाटित करती हैं। पंचतंत्र की कथाएँ जहाँ सत्ता, कूटनीति और व्यवहार-बुद्धि का पाठ पढ़ाती हैं, वहीं जातक कथाएँ करुणा, त्याग और अहिंसा जैसे आदर्शों की प्रतिष्ठा करती हैं। इस प्रकार बोधकथाएँ भारतीय ज्ञान परम्परा में आदर्श और यथार्थ दोनों के बीच सेतु का काम करती हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में शिव नारायण सिंह की बोध कथाओं के विशेष संदर्भ में यह विश्लेषित किया गया है कि किस प्रकार बोध कथाएँ भारतीय ज्ञान परम्परा की संवाहक बनकर समकालीन समाज विशेषतः विद्यार्थियों की चेतना को संस्कारित करती हैं।

बीज शब्द- भारतीय ज्ञान- परम्परा, बोधकथा, बौद्धिक, सामाजिक परिष्कार, लोक- जीवन, राजनीतिक-चातुर्य, पंचतंत्र, जातक।

इसी लोकबोध से जुड़ी ज्ञान- परम्परा का आधुनिक विस्तार शिव नारायण सिंह की बोधकथाओं में परिलक्षित होता है। उनकी बोधकथाएँ विशेषतः विद्यार्थियों को संबोधित हैं, किन्तु उनमें निहित मूल्य व्यापक सामाजिक संदर्भ रखते हैं। उनकी पुस्तक 'विद्यार्थियों से...' में संकलित बोध कथाएँ भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल तत्वों- अनुशासन, कर्तव्य, श्रम, नैतिकता और आत्मविश्वास को समकालीन जीवन से संपृक्त करती हैं। यह कथा आधुनिक जीवन की जटिलताओं के बीच भारतीय ज्ञान परम्परा की प्रासंगिकता को पुनः स्थापित करती हैं।

बोध कथा शब्द में बोध का अर्थ है- जागृति, चेतना, शिक्षा, ज्ञान और कथा का तात्पर्य है- वर्णन, आख्यान, कहानी। इस प्रकार बोधकथाएँ वे होती हैं- जिनके माध्यम से कोई न कोई संदेश या शिक्षा, कथा कहने वाला अपने श्रोताओं या पाठकों तक पहुँचाना

चाहता है और उन कथाओं के माध्यमों से श्रोताओं या पाठकों के जीवन एवं जगतबोध को जाग्रत, उन्नत, विकासशील तथा गतिशील बनाता है।"

शिव नारायण सिंह की बोधकथाओं का प्रमुख स्वरूप यह है कि वे प्रत्यक्ष उपदेश देने के बजाए जीवन के छोटे- छोटे अनुभवों और उदाहरणों के माध्यम से श्रोताओं के अन्तस्थल में उतरती हैं। यह शैली भारतीय गुरु-शिष्य परम्परा का स्मरण कराती हैं, जहाँ ज्ञान को संवाद और अनुभव के माध्यम से आत्मसात किया जाता था। शिव नारायण सिंह विद्यार्थियों से आत्मीय संवाद स्थापित करते हुए उन्हें जीवन की वास्तविक चुनौतियों से रूबरू कराते हैं और समाधान के रूप में भारतीय मूल्य- बोध से परिचित कराते हैं।

इस दृष्टि से उनकी कथाएँ आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में मूल्य आधारित शिक्षा का सशक्त माध्यम बन जाती हैं। 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' सूत्र से प्रेरणा लेकर शिव नारायण सिंह विद्यार्थियों के मन-मस्तिष्क में उसी जिज्ञासा को जागृत करने का प्रयास करते दिखाई देते हैं। उनकी मान्यता है कि शिक्षा का लक्ष्य विद्यार्थियों के मस्तिष्क को सूचनाओं से लैस कर देना मात्र नहीं है, बल्कि ज्ञान से पूरित सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास है।

भारतीय परम्परा में उपनिषद संवाद की प्रक्रिया जो मूल दृष्टि से निर्माण-विकास और विस्तार का अनूठा स्रोत है, इस प्रक्रिया की बुनियादी शिक्षा धीरे-धीरे मानव के जीवन का केन्द्र बन गयी है, संवाद की केंद्रीयता एवं भूमिका को ठीक ढंग से पढ़ना और समझना जरूरी है, शिव नारायण सिंह जी की कही और छपी हुई कथाएँ भारतीय कथा की महान परम्परा का आधुनिक विकास है। जो पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है।

'मूल्यों के निर्माण कलश' नामक यह पुस्तक जिसे विद्यार्थियों को ज्ञानात्मक संवेदन की दृष्टि के कल्याण हेतु निर्मित किया गया है जिसे उस दिशा में किया गया एक विनम्र प्रयास कह सकते हैं।

आलेख- शीर्षक नवसृजन के आह्वान में विद्वान द्वारा यह कहा गया है कि श्री शिव नारायण सिंह की मार्मिक चिन्तन का उद्देश्य यह है कि वह कथाओं के द्वारा छात्रों को मन की अनन्त शक्ति का बोध कराना चाहते हैं इनकी कथात्मकता बहुत रोचक और आकर्षक है। सही अर्थो में कहें तो मनुष्य की संरचना, तर्क एवं सृजन की आधारशिला है।

बोध कथा 'मन' में श्री शिव नारायण सिंह ने मन के विषय में जो सोचा है, जाना है, समझा है, इसके आधार पर वह छात्रों को यह बोध कराना चाहते हैं कि मन की तमाम फ्रीक्वेंसी हैं। यहाँ यह कहना सही है कि अगर आपका मन एकाग्र है और आप किसी चीज का चिंतन करते हुए आगे बढ़ते हैं तो निश्चित रूप से आप उसके निष्कर्ष तक पहुँच ही जायेंगे।

'सम्पर्क-जुड़ाव' नामक कथा के माध्यम से शिव नारायण सिंह जी एक ऐसे राजा की कथा सुनाते हैं जो प्रतिदिन एक नई कथा सुनने का अभ्यस्त हो चुका है, जिस प्रकार प्रेस्टिज संस्था की प्रार्थना सभा में उपस्थित विद्यार्थी। राजा के राज्य में तो यह चिंतन का विषय बना हुआ है। राज दरबार में प्रतिदिन एक नयी कहानी के साथ उपस्थित होना राजा के लिए तो यह प्रमोद परन्तु मंत्री के लिए संकट की स्थिति है। राजा के निर्देशानुसार मंत्री ने आस-पास के राज्यों में सूचना भिजवा दिया कि यदि कोई कथाकार जो प्रतिदिन एक नयी कथा सुना सके तो उसे हमारे राजा द्वारा निश्चित ही कोई बड़ा पद और अधिक-से-अधिक धन प्राप्त हो सकता है।

सूचना के पश्चात् एक कथाकार राज दरबार में उपस्थित हुआ। परिचय देते हुए कि उसके पूर्वज इसी राजदरबार के सेवक रह चुके हैं और अब वह दूसरे राज्य में रहता है, नयी कथा सुनाने हेतु वह राजा से निवेदन करके कथा प्रारम्भ करता है। बात उस समय की है जब कथाकार के परदादा उस राजा के परदादा के साथ आखेट करने के लिए जंगल जाया करते। उनकी धनुष की नोक इतनी बड़ी कि नदी के इस किनारे से उस किनारे तक रहती। अब सवाल यह कि राजा ने वह धनुष देखा है ? नहीं। कथाकार कहानी को दूसरे दिन रूप देता हुआ यह कहता कि वह धनुष जिस

पर आपके परदादा जब प्रत्यंचा चढ़ाते तो उसकी टंकार से बिजली चमकने लगती, वर्षा प्रारम्भ हो जाती, प्रश्न यह कि इस तथ्य से आप अवगत हैं ? राजन् नहीं।

कथाकार तीसरे दिन जब कहानी प्रारम्भ करता तो यह बताता है कि जब आपके परदादा धनुष पर तीर रखकर खींचते तो धरती डोलने लगती, नदियों में उफान आ जाता, क्या आप इस तथ्य से अवगत हैं ? राजन् नहीं। इसी प्रकार चौथे दिन कथाकार ने यह बता बताया कि राजन् जब धरती डोलने लगती, नदियों में उफान आ जाता। तब आपके परदादा के कहने पर मेरे परदादा धरती पर जोर से अपना पैर रखते तो धरती डोलना और नदियों का उफान शान्त हो जाता, क्या इस तथ्य से आप परिचित है ? राजन् ने फिर वही जवाब दिया नहीं। कथाकार अगले दिन दरबार में उपस्थित होने की बात कहकर लौट गया। परन्तु राजा अब मन-ही-मन बहुत क्रोधित हुआ और दरबारियों को आदेश दिया कि कल जब कथाकार कहानी सुनाये तो यह कहना कि हम सबने इसे पहले ही सुन रखा है।

पाचवें दिन जब कथाकार ने कहानी सुनाई और कहा- राजन् आपके परदादा द्वारा धनुष से साधा गया वह तीर बादलों में जाता तो सोने के सिक्कों की वर्षा होती, क्या आप इस तथ्य से अवगत हैं ? राजा सहित सभी दरबारियों ने हाँमी भरी। अन्ततः कथाकार ने राजा से निवेदन किया कि वह निर्भय होकर अपनी बातों की पुष्टि चाहता है। तब राजा के अन्दर असमंजस और संकोच का भाव आता है परन्तु वह फिर भी उसे अपनी बात कहने का अवसर देता है। कथाकार कहता है. कि वह प्रतिदिन कहानी कह रहा था परन्तु मन में एक खटक है जो उसे विचलित कर रही है। वह यह कि राजन् आप अपने पूर्वजों के सम्पर्क में रह रहे हैं परन्तु उनसे आपका जुड़ाव दृष्टिगत नहीं होता। अतः शर्त के अनुसार उन सिक्कों का कुछ अंश मेरे परदादा का है जो आपके खजाने में भरा हुआ है। मैं वही लेने आया हूँ। कथाकार द्वारा कही गई यह बात राजा के लिए संशय का विषय बन गयी। तब उसने कथाकार को अगले दिन पुनः दरबार में उपस्थित होने को कहा, परन्तु स्वयं पूरी रात अशांत रहा।

अगले दिन राजन् ने कथाकार से सम्पर्क और जुड़ाव के मध्य उलझी गुत्थी को सुलझाने की बात रखी। तत्पश्चात् कथाकार ने राजन् से यह प्रश्न किया कि - हे राजन् ! आपके राज परिवार के सदस्य अंतिम बार एक साथ कब एकत्र हुए ? राजन् ने कहा-पिछले वर्ष किसी विशेष त्यौहार हेतु किये पूजा-पाठ के अवसर पर सभी एकत्र हुए। कथाकार ने कहा- राजन् ! आपकी आकुलता का कारण यह है कि आप अपने परिवार के संपर्क में है लेकिन आपका परिवार से जुड़ाव नहीं रह गया है। इस बोध-कथा के निष्कर्ष में शिव नारायण सिंह विद्यार्थियों को यह अवगत कराना चाहते हैं कि वास्तव में यदि आप जीवन के औचित्य को समझना चाहते है तो उस कथाकार द्वारा राजा से पूछे गए तीनों प्रश्नों का उत्तर स्वयं से पूछिए। संपर्क पहला कदम है, लेकिन जुड़ाव वह गहरा अहसास है जो मानवीय जुड़ाव रिश्तों को मजबूत और सार्थक बनाता है। जो हमें खुश और स्वस्थ महसूस करने में मदद करता है।

'यत्न देवो भव' के द्वारा विद्यार्थियों के जीवन का मार्गदर्शन करने के लिए उपयुक्त आधारभूत संरचना है, कथा के लेख में शिव नारायण सिंह जी ने यह लिखा है कि बात दक्षिण अफ्रीका की है। कुछ सत्याग्रहियों को जो आन्दोलन करना बन्द नहीं कर रहे थे, बार-बार मना करने पर भी नहीं मान रहे थे, उन्हें जेल में बन्द कर दिया गया, जेल में बन्द होने पर वहाँ की व्यवस्था के अनुरूप कार्य करने में तात्पर्य यह है कि जेल में खाने-पीने के बदले काम करना जरूरी है या फिर पैसा जमा करना होता है। एक टोकन मनी होती है अगर आप जमा कर दें तो आपको काम नहीं करना पड़ेगा अन्यथा काम करना होगा। उन दिनों सत्याग्रहियों के पास पैसा कहाँ था कि जमा करते ? इसलिए सभी को काम करना ही था। जेल में तो सब लोग ऐसे ही टाइमपास करते हैं, कुछ करना नहीं चाहते।

लेकिन एक व्यक्ति उनमें ऐसा। था जो दिन-रात काम में लगा रहता यदि काम न रहता तो कैदियों को पढ़ाने लगता, समय मिलता तो स्वयं भी पढ़ता और कभी-कभी फूलों की देखभाल करने लगता तो कभी सफाई करने लगता अर्थात् एक मिनट चैन से नहीं बैठता। यह बात सभी कैदियों को पता थी। एक दिन गवर्नर ने जेल का निरीक्षण किया और कैदियों की

खोज-खबर लेने लगा, गवर्नर ने कैदी से पूछा- तुम्हें जेल में कोई कष्ट तो नहीं है ? तो उस व्यक्ति ने कहा मुझे तो कोई कष्ट नहीं है, लेकिन इतना जरूर है कि यहाँ मेरे लिए कोई काम ही नहीं है। यहाँ समय नहीं बीतता है, कोई ऐसा काम मुझे दिया जाय जिसमें मैं व्यस्त रहूँ।

व्यक्ति की यह बात सुनकर गवर्नर आवाक रह गया। उसके साथ अब तक ऐसी घटना कभी नहीं घटी थी। गवर्नर ने पूछा ऐसी क्या बात है जो तुम काम करना चाहते हो और लोग तो काम करना ही नहीं चाहते। उस व्यक्ति ने कहा- मैं इसलिए काम करना चाहता हूँ कि मेरी जीवनीशक्ति नष्ट न हो जाय। वह व्यक्ति कौन था जिसने यह कहा ? आपको पता है ? गांधी जी थे। जिन्हें अफ्रीका के जेल में बद कर दिया गया था। वह व्यक्ति जिन्हें हम कर्मयोगी कह सकते हैं। कर्म-योग वह क्रिया है, जो फल की इच्छा के बिना कुशलता और समर्पण के साथ की जाती है। जिससे व्यक्ति आध्यात्मिक रूप से विकसित होता है।

शिव नारायण सिंह का जो मूल योग कॉन्सेप्ट बताया है वह कर्म ही है। कर्म वह जिजीविषा है, जो जीवनीशक्ति के तहत कार्य करती है। "कहा भी गया है-

मातृ देवो भव,
पितृ देवो भव,
गुरु देवो भव"[1]

इसी प्रकार उन्होंने 'यत्न' को परिभाषित करते हुए विद्यार्थियों को यह समझाने का प्रयास किया है कि यत्न का आशय किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किया गया प्रयास, कोशिश, परिश्रम या उद्योग है। गांधीजी ने भी कर्मयोग को साधा जिससे उन्हें पूरी दुनिया जान गयी। प्रिय विद्यार्थियों, यह अवसर आपके सामने भी है, जिस दिन आप पूरी तन्मयता और मनोयोग के साथ अपने उद्देश्य में लग जायेंगे तो निश्चित ही आपको सफलता मिलेगी। जो व्यक्ति कर्मयोगी अथवा एकनिष्ठ हो जाता है वह निःसंदेह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

निश्चय ही प्रकृति ईश्वर की श्रेष्ठ रचना है। इसके कण- कण में उसी लोकव्यापी प्रभु का वास है। अतः शिव नारायण सिंह द्वारा कही गयी प्रत्येक कथा जीवन को उच्च मार्गदर्शन की ओर प्रशस्त करती है, उन्होंने सदैव विद्यार्थियों को ज्ञानात्मक और निर्माण नियंता पथ की ओर अग्रसर करते हुए उज्जवल भविष्य के निर्माण का मार्ग दिखाया है, विद्यार्थियों को यह समझना है कि दृढ़ निश्चय और कड़ी मेहनत से असंभव को भी संभव किया जा सकता है तथा जीवन को सरल बनाने हेतु प्राथमिकताएँ तय करके तथा दूसरों से अपेक्षाएँ घटाकर कृतज्ञता और परामर्श पर ध्यान देकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति करनी है।

भारतीय ज्ञान-परम्परा का आधार श्रुति-स्मृति परम्परा है। वेद, उपनिषद, ब्राह्मण, आरण्यक और दर्शन शास्त्र इसके बौद्धिक पक्ष को निरूपित करते हैं। जबकि स्मृतियाँ, महाकाव्य, पुराण और कथाएँ इसके सामाजिक-संस्कृतिक पक्ष को उद्घाटित करते हैं। उपनिषदों का प्रसिद्ध सूत्र 'सा विद्या या विमुक्तये' इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि भारतीय चिंतन में विद्या का उद्देश्य बंधनों से मुक्ति और विवेक का विकास है। इस ज्ञान के संप्रेषण में कथा, संवाद और दृष्टांत की परम्परा अत्यंत प्राचीन और प्रभावशाली रही है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने भारतीय ज्ञान परम्परा की इसी विशेषता के ऊपर प्रकाश डालते हुए लिखते है, "भारतीय दर्शन का लक्ष्य केवल सत्य की खोज नहीं, बल्कि मानव जीवन का नैतिक और आध्यात्मिक रुपांतरण है।"[2]

भारतीय ज्ञान परम्परा की यही जीवनोन्मुखी दृष्टि बोधकथाओं में रुपाकार ग्रहण करती है। पंचतंत्र, हितोपदेश, जातक कथाएँ, पुराण कथाएँ जैन आगमों और लोक कथाओं में निहित बोध कथाएँ नैतिकता, व्यवहार, बुद्धिजीवन-दर्शन और सामाजिक मूल्यों को सरल कथात्मक ढाँचे में प्रस्तुत करती है। जैसा कि डां. हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- "भारतीय संस्कृति की शक्ति उसकी लोकबोध से जुड़ी परम्परा में निहित है।"[3]

भारतीय साहित्य में बोध कथाओं को कभी-कभी नीतिकथा, उपदेश कथा या प्रेरक कथा भी कहा गया है। इसका मूल उद्देश्य श्रोताओं या पाठकों को किसी नैतिक जीवन दर्शन से परिचय कराना होता है।

ऐसा माना जाता है कि कथा कहने की कला और परम्परा दुनिया को भारत से मिली है। संस्कृत साहित्य में कथा के अनेक अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ उपलब्ध हैं। भारत में कथा की परम्परा गुणाढ्य की रचना 'बृहत्कथा' से आरंभ होकर 'कथासरित्सागर' से होते हुए 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश' और 'जातक कथाओं के रूप में विकसित हुई हैं। संस्कृत साहित्य और बाद की लोकभाषाओं में रचित कथाएँ बोध कथाएँ ही हैं।''[4]

पंचतंत्र को बोध कथाओं का आधार स्तंभ माना जाता है। विष्णु शर्मा द्वारा रचित पंचतंत्र का उद्देश्य राजकुमारों को नीति और व्यावहारिक बुद्धि की शिक्षा देना था । इसमें पशु- पक्षियों के माध्यम से मानवीय प्रवृत्तियों का चित्रण किया गया है। इन कथाओं में राजनीतिक चातुर्य, सामाजिक व्यवहार और नैतिक विवेक का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है। हितोपदेश पंचतंत्र की शैली में लिखा गया है किंतु इसमें कथाएँ अधिक व्यावहारिक और उपदेशात्मक हैं।

पंचतंत्र के विहंगमावलोकन पर स्पष्ट होता है कि शिव नारायण सिंह ने विष्णुशर्मा के पश्चात् ठहर गयी परम्परा को जीवंत करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। पंचतंत्र की कथाओं का उद्देश्य जिस प्रकार नैतिकता की शिक्षा को केन्द्र में रखना रहा। उसी प्रकार शिव नारायण सिंह की प्रत्येक कथा भी उसी उद्देश्य के साथ आगे बढ़ती है। यहाँ पर वरिष्ठ कवि और आलोचक डा. केदारनाथ सिंह की टिप्पणी अवलोकनीय है- ''हमारे समय में बाल-साहित्य की सर्वाधिक उपेक्षा हुई है। विष्णु शर्मा के बाद बाल साहित्य के क्षेत्र में एक बड़ा-सा रिक्त उत्पन्न हुआ है, जिसे शिव नारायण सिंह के इस कार्य को भरने के प्रयास के रूप में देखा जा सकता है।''[5]

जहाँ तक जातक कथाओं का प्रश्न है तो ये बौद्ध परम्परा में बोधकथाओं की उत्कृष्ट उदाहरण है। इनमें बुद्ध के पूर्वजन्मों की कथाओं के माध्यम से करुणा, त्याग, सत्य और अहिंसा जैसे मूल्यों का प्रसार किया गया है। जातक कथाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि ज्ञान केवल उपदेश से नहीं, बल्कि आचरण से सिद्ध होता है। ये कथाएँ भारतीय ज्ञान-परम्परा में नैतिक आदर्शों की स्थापना करती हैं। डा- कपिल कपूर भारतीय ज्ञान-परम्परा की कथात्मक प्रकृति पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं, ''भारतीय ज्ञान प्रणाली में कथा एक संप्रेषणात्मक उपकरण नहीं, बल्कि ज्ञान की एक स्वतंत्र विधा है।"[6]

शिव नारायण सिंह की बोध कथाओं में आत्मविश्वास और सकारात्मक दृष्टिकोण का विशेष महत्त्व है। वे विद्यार्थियों को हीन भावना से बाहर निकालकर आत्मबल और आत्म सम्मान के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। यह दृष्टि उपनिषदों की आत्मकेन्द्रित चेतना 'आत्मा को जानो' के नजदीक दीखती है। कथाकार का यह विश्वास कि प्रत्येक विद्यार्थी में अपार संभावनाएँ निहित हैं, उनकी कथाओं को प्रेरणात्मक बनाता है।"[7]

भारतीय ज्ञान परम्परा में कर्म का विशिष्ट स्थान माना गया है। शिव नारायण सिंह की बोधकथाओं में कर्म, अनुशासन और समय के सदुपयोग पर विशेष बल दिया गया है। उनकी कथाओं में स्पष्ट संकेत झकलता है कि सफलता संयोग से नहीं ' अपितु निरंतर प्रयास, अनुशासन, साहस और आत्मविश्वास से प्राप्त होती है। यह दृष्टि गीता के कर्मयोग सिद्धांत नियंत कुरु कर्मत्वं कर्मज्यायो ह्यकर्मणः। शरीर यात्रापि च तने प्रसिद्धयेदकर्मणः।। से गहरे रूप से जुड़ी हुई है। कथाकार विद्यार्थियों को कर्म से विमुख होने के बजाय कत्र्तव्यपथ पर निडर होकर आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा देते हैं। उनकी कथाएँ स्पष्ट करती हैं कि सफलता केवल आकांक्षा से ही नहीं, बल्कि सतत् कर्म और अनुशासन से प्राप्त होती हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भारतीय साहित्य की इस नैतिक परम्परा के संदर्भ में कहते हैं। "भारतीय साहित्य का मूल उद्देश्य जीवन को संस्कारित और उन्नत बनाना रहा है।"8

इसी प्रकार नैतिकता और मानवीय मूल्यों का पक्ष शिव नारायण सिंह की बोध कथाओं का केन्द्रीय तत्व है। उनकी कथाओं के माध्यम से इस तथ्य पर बार-बार बल दिया गया है कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य केवल परीक्षा में सफलता नहीं, अपितु एक अच्छे नागरिक और संवेदनशील मानव का निर्माण

करना है। उनकी कथाओं में करुणा, सहानुभूति, ईमानदारी, और सामाजिक बोध जैसे मूल्य बार-बार उभरकर सम्मुख उपस्थित होते हैं। ये मूल्य भारतीय ज्ञान-परम्परा की आत्मा हैं, जो व्यक्ति और समाज दोनों के संतुलित विकास की आधारशिला रखते हैं। जैसा कि रामविलास शर्मा लिखते है, ''भारतीय परम्परा में साहित्य का मूल्यांकन उसकी सामाजिक और नैतिक भूमिका के आधार पर होता है।"[9]

भाषा और शैली की दृष्टि से शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ सरल, सहज और प्रभावशाली हैं। उनकी भाषा लोकबोध से जुड़ी हुई है, जो पाठक के मन-मस्तिष्क पर सीधा प्रभाव डालती है। कथात्मक शैली लोकजीवन से ग्रहण किए गए उदाहरण और जीवन दृष्टांत उनकी रचनाओं को रोचक और स्मरणीय बनाते हैं। यह शैली भारतीय कथा परम्परा की निरंतरता को दर्शाती है, जहाँ सरल भाषा में गहन अर्थ संप्रेषित किया जाता है।

आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में जब मूल्यगत संकट और नैतिक विचलन जैसी समस्याएँ विकराल रूप में सम्मुख खड़ी हैं, तब शिव नारायण सिंह जैसे लेखक की बोधकथाएँ अत्यंत प्रासंगिक हो जाती हैं। यद्यपि नयी शिक्षा नीति में मूल्य-आधारित शिक्षा पर बल दिया गया है किंतु उसके लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में और भी गंभीर प्रयास अपेक्षित है। इसी संदर्भ में शिव नारायण सिंह की बोध कथाएँ भारतीय ज्ञान परम्परा को आधुनिक शिक्षा से सन्नद्ध करने की एक सार्थक कोशिश हैं। उनकी कथाएँ केवल पढ़ने योग्य साहित्य नहीं, बल्कि जीवन-निर्माण का मार्ग दर्शन प्रस्तुत करती हैं।

निष्कर्ष- उपर्युक्त विवरण के आलोक में कहा जा सकता है कि शिव नारायण सिंह की बोधकथाएँ भारतीय ज्ञान परम्परा की सशक्त संवाहक हैं। वे परम्परागत भारतीय मूल्यों को समकालीन संदर्भ में प्रस्तुत करते हुए विद्यार्थियों और समाज के दोनों के लिए प्रेरणास्रोत बनती हैं। उनकी रचनाएँ प्रमाणित करती हैं कि भारतीय ज्ञान परम्परा आज भी जीवंत है और बोधकथाओं के माध्यम से नयी पीढ़ी तक प्रभावी रूप में पहुंचने में सर्वथा सक्षम हो सकती है।

सन्दर्भ सूची-

1- शिव नारायण सिंह, विद्यार्थियों से, खण्ड 05, प्रेस्टिज प्रकाशन देवरिया, पृष्ठसंख्या -15

2- भारतीय दर्शन, खण्ड-एक राधाकृष्णन, एस. प्रका0 राजपाल एंड संस, नई दिल्ली, संस्करण 2011, पृ0. 25

3- भारतीय संस्कृति के चार अध्याय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2014, पृ0.18

4- मूल्यों के निर्माण कलश, लेख-बोध कथाओं का आधुनिक रूप, डा0 मैनेजर पाण्डेय सम्पादक- डा.अरुणेश नीरन, डा. दिनेश कुशवाह, प्रभात प्रका0 लि0, नई दिल्ली, पृ0. 16

5- मूल्यों के निर्माण कलश, भूमिका डा0 केदारनाथ सिंह, संपादक - डा0 अरुणेश नीरन, डा. दिनेश कुशवाह, प्रभात प्रका0 लि0, नई दिल्ली,

6- भारतीय ज्ञान परम्परा और भाषा, डा0 कपिल कपूर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण- 2010, पृ.68

7- श्री श्रीमद्भगवद्गीता, अ. 3, श्लो. 8, गीता प्रेस, गोरखपुर

8- हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्रशुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. 22

9- भारतीय संस्कृति और हिंदी साहित्य, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2012, पृ0. 59

© 9454806323
✉ Shivshivoaham@gmail.com

स्वामित्व- शिव नारायण सिंह, अध्यक्ष, जागो शिव न्यास, शिवलोक, गोरखपुर उ. प्र.
के उपक्रम बोधकथा शोध संस्थान की मासिक ई पत्रिका 'शोध बोध' में छपे शोध आलेख
की सम्पूर्ण ज़िम्मेदारी शोधार्थी की होगी, किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र गोरखपुर होगा।